वर्ष ३ अंक २५-२६
विक्रम संवत् २०७६ कार्तिक- मार्गशीर्ष
नवंबर- दिसम्बर संयुक्त अंक

आर्ष क्रान्ति

वैदिक समाज व्यवस्था के लिए समर्पित

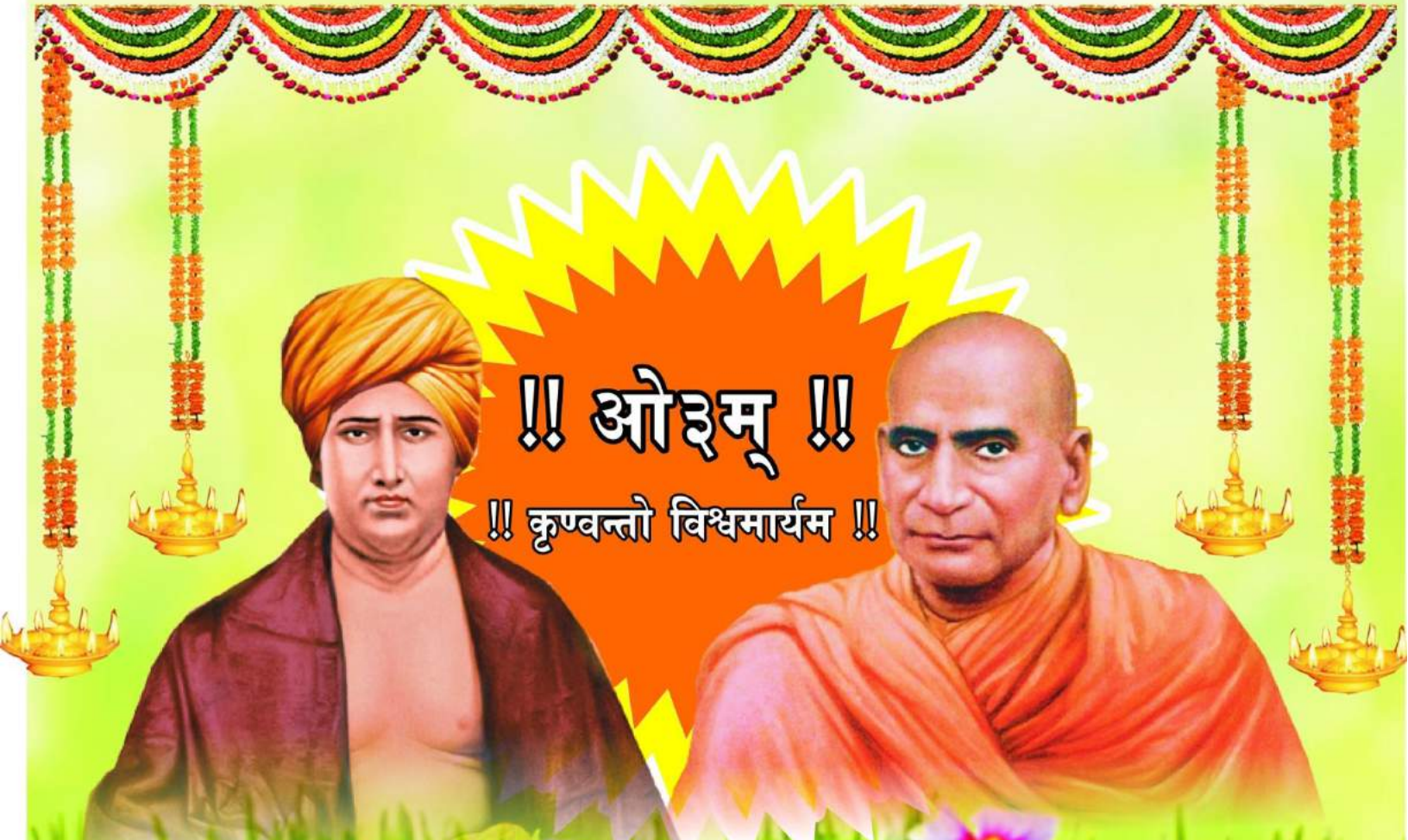

आर्य लेखक परिषद्

ओ३म्

आर्य लेखक परिषद् का मुख पत्र

आर्ष क्रान्ति

नवम्बर– दिसम्बर 2020

वर्ष–३ अंक–२६,
विक्रम संवत् २०७७
दयानान्दाब्द– १६६
कलि संवत् – ५१२१
सृष्टि संवत् –१,६६,०८,५३,१२१

प्रधान सम्पादक
वेदप्रिय शास्त्री
(७६६५७६५११३)

❖

सम्पादक
अखिलेश आर्येन्दु
(८१७८७१०३३४)

❖

सह सम्पादक
प्रांशु आर्य (कोटा)
(८७३६६७६६३०,
६६६३६७०६४०)

❖

आकल्पन
प्रवीण कुमार (महाराष्ट्र)

❖

सम्पादकीय कार्यालय
महर्षि दयानन्द आश्रम
ग्राम सिताबाडी, केलवाड़ा
जिला–बारां (राजस्थान)–३२५२१६

अनुक्रम

विषय

१. जीवन (सम्पादकीय)
२. पी गए (कविता)
३. आस्तिकवाद बनाम विकासवाद : एक चिंतन
४. मैं अपनी गागर का पानी (कविता)
५. Third Duty : Service to Parents
६. मोक्ष का संकल्प
७. प्रकृति, विकृति और संस्कृति के मूलार्थ को समझें
८. महर्षि दयानंद : समाज में ज्ञान....
९. विभ्रम (कविता)
१०. पंडित प्रकाश चन्द कविरत्न.
११. स्वराज्य, स्वधर्म व स्वाभिमान हेतु बलिदानी....
१२. कुरान में वेदांश
१३. दिव्य दयानंद
१४. सूप कहै तो कहै, चलनिऔ कहै
१५. राष्ट्र अस्मिता के हमले (कविता)
१६ उच्च शिक्षा स्वभाषाओं में ?
१७ वैद्य गुरुदत्त
१८ जिजीविषा (कविता)

ईमेल – aryalekhakparishad@gmail.com
वेबसाइट – https://aryalekhakparishad.com/
फेसबुक – आर्य लेखक परिषद्

Digital

विशेष दिवस जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी हैं प्रेरणा प्रद् हैं, जिनका अपना महत्व है!

नवंबर और दिसंबर के विशेष दिवस आइए, हम उनसे प्रेरणा लें–

1 नवंबर – विश्व शाकाहार दिवस,सेना उड्डयन दिवस
5 नवंबर – राष्ट्रीय आयुर्वेद दिवस,विश्व सुनामी जागरूकता दिवस
7 नवंबर – राष्ट्रीय कैंसर जागरूकता दिवस
8 नवंबर – विश्व रेडियोलॉजी दिवस
10 नवंबर – विश्व विज्ञान दिवस और विकास के लिए,
11 नवंबर – राष्ट्रीय शिक्षा दिवस
12 नवंबर – विश्व निमोनिया दिवस
13 नवंबर – दयालुता दिवस
14 नवंबर – बाल दिवस, दीपावली और महर्षि दयानंद बलिदान दिवस
15 नवंबर – दर्शन दिवस
16 नवंबर – राष्ट्रीय प्रेस दिवस
17 नवंबर – साक्षरता के लिए अंतर्राष्ट्रीय दिवस, अंतरराष्ट्रीय छात्र दिवस
18 नवंबर – प्राकृतिक चिकित्सा दिवस
19 नवंबर – विश्व शौचालय दिवस, अंतर्राष्ट्रीय पुरुष दिवस
20 नवंबर – विश्व बाल दिवस
21 नवंबर – विश्व नमस्कार दिवस
1 दिसम्बर – विश्व एड्स दिवस,
2 दिसम्बर – अंतर्राष्ट्रीय दास प्रथा उन्मूलन दिवस, अंतरराष्ट्रीय प्रदूषण निवारण नियंत्रण दिवस
3 दिसम्बर – अंतर्राष्ट्रीय विकलांग दिवस, अंतर अंतर्राष्ट्रीय स्वयं सेवा दिवस
4 दिसम्बर – भारतीय नौ सेना दिवस
6 दिसम्बर – नागरिक सुरक्षा दिवस
7 दिसम्बर – भारतीय सशस्त्र सेना झंडा दिवस
9 दिसम्बर – अंतरराष्ट्रीय भ्रष्टाचार निरोध दिवस
10 दिसम्बर – विश्व मानवाधिकार दिवस
11 दिसम्बर – यूनिसेफ दिवस विश्व बाल कोष दिवस
14 दिसम्बर – भारत का राष्ट्रीय ऊर्जा संरक्षण दिवस
19 दिसम्बर – गोवा मुक्ति दिवस
20 दिसम्बर – अंतरराष्ट्रीय मानव एकता दिवस

उन महान पुरुषों को हम स्मरण करते हैं जिन्होंने अपने त्याग और बलिदान से मानवता को अनमोल वरदान दिया

4 नवंबर – भाई परमानंद जयंती
5 नवंबर – देशबंधु चितरंजन दास जयंती
13 नवंबर – महाराणा रणजीत सिंह जयंती
14 नवंबर – महर्षि दयानंद महाप्रयाण दिवस
16 नवंबर – करतार सिंह सराभा जयंती
17 नवंबर – लाला लाजपत राय बलिदान दिवस
18 नवंबर – महान बलिदानी बटुकेश्वर दत्त जयंती
19 नवंबर – महारानी लक्ष्मीबाई जयंती,समाज सुधारक केशव चंद्र सेन जयंती
21 नवंबर – बलिदानी केसरी सिंह बारहठ जयंती
22 नवंबर – वीरांगना शांति घोष जयंती, लक्ष्मण नायक जयंती,वीर दुर्गादास राठौर पुण्यतिथि
23 नवंबर – डॉक्टर जगदीश चंद्र बसु पुण्यतिथि, पंडित प्रकाशवीर शास्त्री पुण्यतिथि
24 नवंबर – गुरु तेग बहादुर शहीदी दिवस
27 नवंबर – महात्मा ज्योतिबा फुले पुण्यतिथि
29 नवंबर – बहुरिया रामस्वरूप देव पुण्यतिथि
30 नवंबर – महान सेनानी गेंदालाल दीक्षित जन्मदिवस
6 दिसम्बर – डॉक्टर भीमराव अंबेडकर पुण्यतिथि
8 दिसम्बर – बाघा जतिन नाथ मुखर्जी जयंती
10 दिसम्बर – शहीद वीर नारायण सिंह पुण्यतिथि,बलिदानी प्रफुलचंद्र चाकी जन्मदिवस
15 दिसम्बर – लौह पुरुष बल्लभ भाई पटेल पुण्यतिथि
16 दिसम्बर – राजेंद्र नाथ लाहिड़ी पुण्यतिथि,विजय दिवस
17 दिसम्बर – राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त पुण्यतिथि
18 दिसम्बर – महात्मा अमर स्वामी पुण्यतिथि
19 दिसम्बर – काकोरी कांड के अमर बलिदानी
19 दिसम्बर – पंडित राम प्रसाद बिस्मिल पुण्यतिथि
22 दिसम्बर – महान गणितज्ञ रामानुजम जन्मदिवस
23 दिसम्बर – स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस, चौधरी चरण सिंह जन्म दिवस
25 दिसम्बर – मदन मोहन मालवीय जन्मदिवस

सम्पादकीय

जीवन

जीवन सबको प्यारा हो ता है। जीवन अर्थात् चेतना और शरीर का साथ बना रहना यह सबको पसन्द है। जिजीविषा अर्थात् जीने की इच्छा सबकी सदा बनी रहती है। सभी प्राणी यही चाहते हैं कि ऐसा समय कभी न आवे जब हम न रहें। यह प्रथम कामना है। प्राणियों में से मनुष्य ऐसा प्राणी है जो यह समझता है कि यह जीवन कभी भी नष्ट हो सकता है, शरीर क्षणभंगुर है, नश्वर है। अतः मनुष्य सदा ही मृत्यु से भयभीत रहता है, उससे बचने और जीवन को बनाए रखने का प्रयत्न करता रहता है। अन्य प्राणी मनुष्य की भांति सम्भवतः मृत्यु के बारे में समझ न रखते हों परन्तु अपने शत्रुओं से भयभीत वे भी रहते हैं।

दूसरी स्थिति है पीड़ा या कष्ट की। इसे भी कोई पसंद नहीं करता। हमारी अनुकूलता में बाधा या अवरोध आ जाने से होने वाली हमारी अनुभूति ही पीड़ा, कष्ट या दुःख है जो अनेक प्रकार से और अनेक प्रकार की होती है। मेरी समझ में मनुष्येतर सम्भवतः मृत्यु से न डर कर पीड़ा या कष्ट से ही अधिक भयभीत रहते हैं। कुछ भी हो परन्तु पीड़ा रहित जीवन सदा बना रहने की इच्छा सभी में सामान्य है। अन्य प्राणियों की अपेक्षा मनुष्य को पीड़ा रहित जीवन को बनाए रखने के साधन, सामर्थ्य और और समझ अधिक प्राप्त हैं, फिर भी मनुष्य प्रायःदुखी और भयग्रस्त ही देखा जाता है। मनुष्येतर प्राणी मनुष्य से अधिक सुख प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्य तो भूत और भविष्य की सोच में इतना दुखी रहता है कि वर्तमान में उपलब्ध सुख–साधनों और समय का भी लाभ नहीं ले पाता। अपने आज का आनन्द नहीं उठा पाता। शेखचिल्ली की तरह हिसाब किताब करने में ही सारा जीवन व्यर्थ खो देता है।

सच तो यह है कि जीवन और पीड़ा रहित स्थिति दोनों सदा रहने वाले नहीं हैं। मृत्यु अवश्यंभावी है, ज्ञानी जनों ने तो कह दिया ***"जातस्य ध्रुवं मृत्युः"*** जन्मे हुए की मृत्यु निश्चित है। किसी कवि ने बहुत सटीक लिखा है –

अति यत्न से उत्तम रसायन प्राप्त करते लोग हैं।
स्वर्णादि का आयुष्यहित करते अनेक प्रयोग हैं।
अक्षय्य इनसे किन्तु फल मिलता नहीं है वाकई।
यह मौत धन्वन्तरि तथा लुकमान तक को खा गई।

अर्थात् मर तो वे भी गए जिनके पास मृत्यु से बचने और पीड़ा दूर करने की समझ और सामर्थ्य सबसे अधिक थी।

जीवन के साथ एक सचाई यह भी है कि इसका एक निश्चित क्रम और कालावधि होते हैं। जन्म के बाद बाल्य, किशोर, युवा और जरावस्थाओं का एक क्रम है और औसत कालावधि है, उसके पश्चात् जीवन समाप्त हो जाता है।

प्रमाद और नासमझी से कालावधि के मध्य और किसी भी अवस्था में जीवन समाप्त हो सकता है मृत्यु हो सकती है।

इस लिए वृद्धावस्था और मृत्यु से सदा के लिए बचने की औषधि और उपाय खोजने का प्रयत्न करना मूर्खता मात्र है। असम्भव को सम्भव नहीं बनाया जा सकता। प्रश्न हो सकता है कि तो क्या मृत्यु से और पीड़ा से बचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए ? इसका उत्तर है "अवश्य करना चाहिए"। परन्तु वहीं तक जहां तक उसकी सीमा है। वेद में कहा गया है ***"मापुरा जरसो मृथा"*** अर्थात् *जरावस्था से पहले मत मरे।* वेदों में जो अमरता प्राप्ति के उपदेश हैं उनके बारे में ब्राह्मणकारों ने स्पष्टीकरण करते हुए कहा है कि – ***नामृतत्वस्याशास्ति*** अर्थात् अमरता की आशा नहीं है। पूछा गया कि तो फिर ऐसे उपदेश का क्या अर्थ है? उत्तर दिया गया कि– ***"सर्वं आयुर्जीवति"*** अर्थात् इसका तात्पर्य है कि पूरी आयु जीता है। ***"शतायुर्वै पुरुषः"*** पुरुष की आयु सौ वर्ष है। अतः सौ वर्ष से पहले न मरने और अदीन रहने का प्रयत्न और प्रार्थनादि अवश्य करनी चाहिए।

परन्तु मनुष्य को यह भी याद रखना चाहिए कि उसकी सामर्थ्य और समझ इतनी अल्प है कि जीवन को बनाए रखने और पीड़ा मुक्त रहने के लिए उसे अपने से अधिक सामर्थ्य और समझ वाले किसी अन्य

का सहयोग लेना ही होगा, चाहे वह कोई मनुष्य हो और चाहे कोई अदृश्य शक्ति जिसे वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान समझता है। ***"मृत्योर्मामृतम् गमय"*** की प्रार्थना उसे दोनों से ही करनी होगी। इसके साथ ही उसे अपनी बुद्धि और शारीरिक शक्ति के साथ आलस्य प्रमाद छोड़ कर सतत प्रयत्नशील रहना होगा।बचकाने प्रयास और लापरवाही से न जीवन सुरक्षित रहेगा और न पीड़ा ही दूर होगी। अतः व्यक्ति और समाज दोनों का यही प्रमुख और प्रथम कर्त्तव्य है। दीनता रहित न्यूनतम शतवर्ष का जीवन सबको सुलभ हो।

इसके लिए जनसामान्य में जीवन के प्रति आदर भाव उत्पन्न करना चाहिए। उन्हें जीवन की कदर करनी होगी। दुर्भाग्यवश वर्तमान में यह नहीं हो रहा। लोग जीना तो चाहते हैं, सुख भी चाहते हैं परन्तु आहार, विहार और व्यवहार जल्दी मरने और दुखी करने वाला कर रहे हैं।

जीवन का उपयोग

जीवन है तो उसका कुछ उपयोग भी तो होगा, इसका ज्ञान आज के संसार में लगभग किसी को नहीं रहा, न ही लोग इसके लिए प्रयत्नशील हैं। वास्तव में या तो जीवन का दुरुपयोग हो रहा है या फिर वह व्यर्थ ही नष्ट हो रहा है।

जीवन का फल किसी को भी प्राप्त नहीं हो रहा, सबका जीवन असफल ही बीता जा रहा है।

वेदों में जीवन का फल बताया गया है, उसे ही प्राप्त करने के लिए कर्म करने की प्रेरणा की गई है। जीवन का फल है – ***'सत्य यश और श्री की प्राप्ति'।*** ये तीनों ही श्री हैं अर्थात् मनुष्य के आश्रय में रहने वाली हैं। इन्हें आश्रय देने से मनुष्य का जीवन सफल और धन्य हो जाता है। वह श्रीमान् हो कर लोक और परलोक दोनों का अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इसलिए वैदिक समाज या आर्य समाज तभी सार्थक होगा जब उसकी प्रत्येक व्यक्ति इन तीनों के लिए लालायित होगी, श्रीमानता की कामना करेगी और हृदय की पूरी श्रद्धा और सच्चे पवित्र मन से कहेगी कि –

सत्यम् यशःश्रीर्मयि श्रीःश्रयताम्

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री

पी गए

पानी पीते रहे छानकर, बिनछाने ही खून पी गए।
धर्म धुरीण धरा में कितने धर्म और कानून पी गए।।

शोषक सब समाज में सबके, दाता बड़े उदार कहाए।
भक्षक भार लिए रक्षा का, तस्कर साहूकार कहाए।
मिल कर सब बदमाश जगत् में, मानवता का खून पी गए।।१।।

समझौता हो गया धर्म का, बेईमान बदमाशों से।
ब्रह्मचर्य चारित्र्य मिल गए, हैं जाकर ऐय्याशों से।
सदाचार सब धर्मधुरंधर, उपदेशक बातून पी गए।।२।।

देवदासियों से मन्दिर में, वेश्यालय आबाद हो गए।
मद्य मांस मादक पदार्थ सब, पावन भोग प्रसाद हो गए।
भोग लगा कर भगवानों को, गांजा भांग अफ्यून पी गए।।३।।

कामकाव्य हैं धर्मग्रंथ,अब खुदा, स्वयम् शैतान बन गया।
अत्याचार, अधर्म, पाप पाखण्ड सभी ईमान बन गया।
धर्म और भगवान" वेदप्रिय" कंगालों का चून पी गए।।४।।

– ✍ वेदप्रिय शास्त्री
सीताबाडी (राज.)

आस्तिकवाद बनाम विकासवाद : एक चिंतन

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

'मूलनिवासी और आक्रमणकारी आर्य' शृंखला मार्च 2020 अंक तक निरंतर चलती रही। 'वेदकाल निर्णय और आर्यों के निवास के सम्बंध में अज्ञानता' मार्च अंक का शीर्षक था। देश में कोरोना के कारण पूर्णबंदी मार्च माह में लगा दी गई। सारा देश जहाँ था वहीं बंद हो गया। यहाँ तक कि सामान्य आवागमन भी बंद कर दिया गया। जिनका ठिकाना शहर के अतिरिक्त गाँवों में भी था, वे गाँव चले गए थे। मैं भी गाँव चला गया था। गाँव में लेखन की कोई सुविधा नहीं थी। कम्प्यूटर न होने के कारण लेखन की सुविधाएं गाँव में नहीं रहीं। इस कारण आर्ष क्रांति में सतत् प्रकाशित होने वाला धारावाहिक 'मूलनिवासी और आक्रमणकारी आर्य' भी बंद करना पड़ा। नवम्बर में मैं गाँव से पुनः दिल्ली आ गया हूं जिससे स्थगित शृंखला को इस अंक से पुनः प्रारम्भ किया जा रहा है। मार्च 2020 में जिस विशेष विषय पर शृंखला लेख लिखा गया था वह वेदकाल निर्णय और आर्यों के निवास के सम्बन्ध में विद्वानों के विचार पर आधारित था। वेदकाल के सम्बन्ध में भारतीय और विदेशी विद्वानों के विचार आपस में उलझे हुए हैं। जिन प्रमाणों, तथ्यों, मान्यताओं, धारणाओं और तर्कों पर विद्वानों ने 'वेदकाल' को सिद्ध करने का प्रयास किया वे तर्क, प्रमाण और मान्यताएं प्रत्येक दृष्टि से प्रमाणित नहीं दिखती हैं। इस कारण वेदकाल के सम्बंध में कोई प्रमाणित बात कहना सर्वसम्मति से उचित नहीं जान पड़ता। लेकिन महर्षि दयानंद, श्री अरविन्द जैसे दाशनिकों के विचार इस सम्बन्ध में सत्य की तराजू पर संतुलित द्रष्टव्य होते हैं।

इस अंक से शृंखला को पुनः प्रारम्भ किया जा रहा है। 'आस्तिकवाद और बनाम विकासवाद : एक चिंतन' लेख में आधुनिक विज्ञान विकासवाद के सम्बंध में क्या कहता है, उसकी विवेचना की गई है। आशा है, लेख का स्वागत पाठकगण उसी तरह करेंगे जैसे पूर्व में करते थे।

– सम्पादक

विकासवाद प्राणी विकास का आधुनिक सिद्धांत है। यह विश्वभर में पढ़ा–पढ़ाया जाता है। अनेक चर्चाएं और शोध इस पर किए जाते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है कि प्राणी विकास का यह सिद्धांत वैज्ञानिक दृष्टि और मानक के अनुसार सत्य है। मैंने विज्ञान में स्नातक करते समय इसे इण्टर मीडिएट और बीएससी की कक्षाओं में पढ़ा था। लेमार्क और डार्विन जैसे अनेक जीव वैज्ञानिकों का सृष्टि विज्ञान का सिद्धांत मैंने पढ़ा था। इसमें ईश्वर की कहीं भूमिका न होने के कारण इनके विकास के सिद्धांतों को कभी स्वीकार नहीं किया था। साहित्य, दर्शन, संस्कृति और अध्यात्म मेरे जीवन के साथ–साथ रहे हैं। इसलिए यह कभी नहीं स्वीकार कर पाया कि सृष्टि उत्पत्ति और जीवों का विकास धीरे–धीरे अपने आप हुआ, इसमें ईश्वर की कोई भूमिका नहीं है। सत्यार्थप्रकाश, वैदिक सम्पत्ति, वैदिक सम्पदा, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका जैसे अनेक ग्रंथों का प्रणयन करने के कारण आधुनिक विज्ञान का कोई भी सिद्धांत मैंने बिना विचार किए स्वीकार नहीं किया। भारत की नई पीढ़ी सोशल मीडिया और नए विचारों के साथ चलती है, लेकिन धर्म, अध्यात्म, दर्शन और विज्ञान के सम्बंध में वह चिंतन उस तरह नहीं करती, जैसे अन्य विषयों पर करती है। इसलिए विकासवाद के सम्बंध में वह अपने स्कूल व कालेज की पुस्तकों में जो पढ़ती है उसे हूबहू मान लेती है। यही कारण है कि इतिहास और विज्ञान की अमान्य बातें भी बिना चिंतन किए मान लेती है। जबकि उसे प्रत्येक सिद्धांत, सूत्र और नियम पर स्वतंत्र मन से चिंतन करना चाहिए।

आधुनिक विज्ञान और वेद विज्ञान

आधुनिक विज्ञान ने अनेक उपलब्धियां हासिल की हैं। आज मानव चन्द्रमा और अन्य ग्रहों –उपग्रहों की सैर कर आया है। अनगिनत आविष्कार हो चुके हैं और हो रहे हैं। मोबाइल, कम्प्यूटर, आधुनिक युद्ध प्राणालियां और शल्य चिकित्सा सहित विज्ञान का प्रत्येक क्षेत्र अपनी उपलब्धियों पर गर्व कर रहा है। लेकिन कुछ क्षेत्र और सिद्धांत ऐसे हैं जहां नए सिरे से चिंतन करने की आवश्यकता है। और यह क्षेत्र है जीव विज्ञान का विकासवाद। विकासवाद पूर्णतया विज्ञान मूलक बताया

जाता है। आधुनिक विज्ञान का मतलब यूरोपियन साइंस से है। हमें यह स्वीकार करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि आधुनिक विज्ञान का विकास यूरोपियन देशों में हुआ। भारत में जब यूरोपियन विज्ञान का प्रचार–प्रसार हुआ तो उसके साथ उन देशों की भाषाएं और संस्कृ –तियाँ भी साथ आईं। भारत में पाश्चात्य संस्कृति का अंधाधुंध प्रचार–प्रसार और स्वीकारता का एक कारण यह भी है।

विकासवाद का सिद्धांत डारविन और लेमार्क का माना जाता है। जीव विज्ञान का सृष्टि उत्पत्ति का सिद्धांत विकासवाद का सिद्धांत है। विकासवाद के अनुसार प्राणी अथवा जीवन–तत्त्व का प्रथम आविर्भाव जलों में उद्भिद् के रूप में हुआ। इसके अनुसार जल–मिट्टी–वायु आदि के संयोग से एक प्रकार की सूक्ष्म काई बनी। उसी में पुनः जल–वायु का विलक्षण प्रभाव प्राप्त कर समस्त जलीय तथा धरती के तृण, लता, वृक्ष, गुल्म, ओषधि, वनस्पति तथा विविध वृक्षों आदि का क्रमशः विकास हुआ। कालानन्तर में इसी मूल जीव–बीज से सर्वप्रथम जल में ही एक दूसरी जीवन–शाखा चली। यह जीवन–शाखा एक कोशकीय प्राणी अमीबा कहा गया। फिर द्विकोशकीय प्राणी बनें और विकासक्रम में आगे बहुकोशकीय प्राणियों का विकास जल से थल और जल–थल दोनों पर रहने वाले प्राणियों का हुआ। और धीरे–धीरे विकास होता हुआ जलीय कीट, मछली, मेढक, सर्प, कछुआ, वराह, रीछ, बन्दर, बनमानुष आदि विभिन्न प्राणिस्तरों को पार करता तथा विकास होता हुआ आधुनिक मानव (हामोसेपियंस) बन गया। इसमें लाखों–करोड़ों वर्ष लग गए।

आधुनिक विकासवाद का सिद्धांत यह भी बताता है कि मनुष्य का विकास चल रहा है और आगे चलकर मनुष्य शारीरिक और मानसिक रूप से अतिविकसित मानव बन जाएगा। लेकिन यह नहीं बताता कि अतिविकसित होने के बाद मनुष्य और कितना विकसित होगा।

विज्ञान का एक नियम है, वह नियम है विज्ञान का कोई भी सिद्धांत या नियम अंतिम नहीं कहा जा सकता है। उसमें हमेशा परिवर्तन की संभावना बनी रहती है। लेकिन आधुनिक विकासवाद का सिद्धांत डारविन ने जो दिया था वह नव डारविनवाद के बाद उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है।

अब हम विचार करें कि विकासवाद का जो सिद्धांत विज्ञान की पुस्तकों में पढ़ाया जाता है, क्या वह चिंतन, तर्क और विज्ञान के नियम के अनुसार सत्य है? विकासवाद में पृथ्वी की उत्पत्ति हुए 4 अरब वर्ष के लगभग है। इसके अनुसार यह प्रारम्भ में अग्नि का जलता हुआ गोला थी। लाखों वर्षों में वर्षा होने से यह ठंठी हुई । वर्षा और भूकम्प के कारण कहीं समुद्र, नदी बन गए और कहीं–कहीं समतल और मरुथल। पृथ्वी पर मनुष्य की उत्पत्ति करोड़ वर्ष पूर्व हुई। हैकल नामक वैज्ञानिक के अनुसार प्राणियों के विकासक्रम में मनुष्य का विकास हुआ। अमीबा से लेकर आधुनिक मनुष्य बनने तक में लगभग बाइस करोड़ वर्ष लगे। डाक्टर गैडी के अनुसार मछली से मनुष्य होने में 53 लाख 75 हजार पीढ़ियाँ बीतीं। इतनी ही पीढ़ियाँ अमीबा से मछली से बनने में लगीं। इसके हिसाब से अमीबा से आज तक लगभग एक करोड़ पीढ़ियाँ बीत चुकीं हैं। कोई पीढ़ी एक दिन और कोई सौ वर्ष तक जीवित रहती है। यदि सबका औसत 25 वर्ष मान लें तो इस हिसाब से प्राणियों के प्रादूर्भाव को आज 25 करोड़ वर्ष होते हैं। यह देख चुके हैं कि जीव वैज्ञानिक मानते हैं कि पृथ्वी के निर्माण के करोड़ों वर्षों बाद प्राणियों की उत्पत्ति हुई। इस हिसाब से प्राणियों की उत्पत्ति आज तक 25 करोड़ वर्ष हुए। यह गणना विकासवादियों द्वारा निर्धारित अवधि (दस करोड़ वर्ष) से आगे निकल गई है। इससे यह पता चलता है कि पृथ्वी और प्राणियों की उत्पत्ति का जो सिद्धांत विश्वभर में प्रचलित है वह तर्क, गणना और नियम के धरातल पर खरा नहीं है।

विकासवाद में प्राणियों के विकासक्रम में जो अंग अशक्त हो जाता है वह आगे चलकर कुछ पीढ़ियों में समाप्त हो जाता है। इसके उदाहरण में वे मनुष्य की पूँछ का धीरे–धीरे समाप्त होना बताते हैं। इसी तरह जिस अंग का प्रयोग अधिक किया जाता है वह अंग कुछ पीढ़ियों में सशक्त हो जाता है। एक और नियम विकासवादियों ने प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार प्राण रक्षा के लिए जिस क्रिया की आवश्यकता नहीं रहती, उसका अभ्यास नहीं रहता। अभ्यास न रहने से वह अंग अशक्त हो जाता है। भोजन के लिए प्रयत्न, प्राकृतिक संघर्ष और शत्रुओं से रक्षा के लिए प्राणी को अनेक परिवर्तनों में से गुजरना पड़ता है। उनमें से जो स्वयं

को परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित कर लेता है वे बच जाते हैं और जो ऐसा नहीं कर पाते वे हमेशा के लिए समाप्त हो जाते हैं। इन्हीं कारणों से शरीर में धीरे–धीरे परिवर्तन होता रहा और प्राणी विभिन्न योनियों में बँट गया। आधुनिक विकासवाद मानता है कि क्रमिक विकास में उसकी इच्छा तथा उसको पूरा करने के लिए किए गए चिर कालीन अभ्यास के परिणाम स्वरूप होने वाले आकृति परिवर्तन के उदाहरण के रूप में अफ्रीका के मरुदेश में पाए जाने वाले लम्बी गर्दनवाले जिराफ़ का उल्लेख किया जाता है। वैज्ञानिक मानते हैं कि जिराफ़ पहले ऐसा नहीं था, जैसा आज देखा जाता है। जिराफ़ ने जब वृक्षों के नीचे वाले पत्ते खा लिए तो ऊपर वाले पत्ते खाने की इच्छा हुई। अपनी इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए वह गर्दन उठा–उठाकर प्रयत्न करने लगा। चिरकाल तक ऐसा करने से उसकी गर्दन लम्बी हो गई।

वैज्ञानिकों के इस मान्यता पर विचार करने से आकृति–परिवर्तन की यह मान्यता युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होती। जिराफ़ की गर्दन इस लिए लम्बी हो गई कि वृक्षों की नीचे वाली पत्तियां समाप्त हो गईं थीं अब उन्हें भोजन के लिए ऊपर की पत्तियों को प्राप्त करना आवश्यक था। लेकिन यदि वृक्षों की ऊपर की पत्तियों को खाने के लिए जिराफ़ को गर्दन बार–बार उचकाना पड़ता था तो जिराफ़ को गर्दन बढ़ाने की अपेक्षा वृक्षों पर चढ़कर खाने की प्रवृत्ति का विकास उसमें क्यों नहीं हुआ। और बकरी जब नीचे की पत्तियों को चुग लेती है तब तने पर या टहनियों पर अगले पैर टिकाकर पत्ते चुग लेती है। अनगिनत वर्षों से वह उसी तरह अपना पेट भरती रही है। परन्तु आज तक न उसकी गर्दन बढ़ी, न उसका अगला भाग लम्बा हुआ, और न उसके लिए चारे की कमी हुई। जिराफ़ के सम्बंध में जो मान्यता चली आ रही है उस पर कोई विचार नहीं किया गया आज तक। जबकि यह मान्यता विज्ञानसंगत है ही नहीं। विचारणीय बात यह है कि जिराफ़ को अपना गर्दन बढ़ाने के बजाय बन्दर की तरह पेड़ पर चढ़ने की प्रवृत्ति का विकास उसमें क्यों नहीं हुआ? इसी तरह मनुष्य लाखों वर्षों से उत्तरी ध्रुव तथा ग्रीन लैंड जैसे अतिशीत प्रधान देशों में बसा हुआ है,किन्तु शीत से बचने की इच्छा तथा आवश्यकता को होते हुए भी उसके शरीर पर रीछ जैसे बाल पैदा नहीं हुए। एक उदाहरण और। राजस्थान की मरुभूमि में रहने वाली भेंड़ के बाल जैसे होते हैं वैसे ही हिमालय के शीत प्रधान स्थान पर रहने वाली भेंड़ के होते हैं। जब कि विकासवाद के अनुसार शीत प्रधान स्थान वाली भेंड़ों के शरीर पर ही बाल उसको शीत से बचाने के लिए होने चाहिए। विकासवाद के अनुसार आत्मरक्षा की भावना के कारण कारण,चीतल, नीलगाय आदि अनेक जंगली पशुओं में नर के सींग होते हैं, मादा के नहीं। क्या आत्मरक्षा के लिए सींगों की आवश्यकता नर को ही होती है, मादा को नहीं। एक सामान्य बात पर विचार करना चाहिए। पालतू गाय–भैंस में आत्म रक्षा का खतरा बहुत कम होता है, फिर भी दोनों के बड़ी–बड़ी सींगें होती हैं। विकासवाद को विज्ञान सम्मत मानने वालों से एक बड़ा प्रश्न है। विकासक्रम में अन्तिम–श्रेष्ठतम प्राणी मनुष्य है। तब भी मनुष्य की तुलना में चींटी जैसे छुद्र प्राणी को वर्षा का और कुत्ते जैसे निकृष्ट प्राणी को भूकम्प का पूर्वानुमान कैसे हो जाता है?

विकासवाद के अनुसार सर्वोच्च प्राणी ही संघर्ष के दौरान जीवित रहता है। मनुष्य सर्वोच्च बुद्धिमान प्राणी है। फिर निबुद्धि और कमजोर प्राणी हमेशा के लिए लुप्त क्यों नहीं हो गए? दूसरी बात, एक कोशकीय प्राणी अपने आप उत्पन्न हो गया। लेकिन इस प्रश्न का उत्तर आज तक नहीं विकासवादी दे पाए कि एक कोशकीय प्राणी कैसे पैदा हो गए? यदि एक कोशकीय पैदा हो सकता है तो बंदर फिर मनुष्य अपने आप पैदा क्यों नहीं हुए गए? इसे करोड़ों वर्षों में विकास की पटरी से क्यों गुजरना पड़ा? एक–एक कोश मिलकर क्या बहु कोशकीय प्राणी बनें? जीवन अपने आप पैदा होना और विकास होते–होते श्रेष्ठ प्राणी बनने की प्रक्रिया विकासवाद कहलाती है। लेकिन यह विकासवाद यह नहीं समझा पाता कि अमीबा स्वयं क्यों पैदा हुआ? यदि अमीबा स्वयं उत्पन्न हो सकता है तो ब्राह्मांड के सभी प्राणी स्वयं पैदा हो सकते हैं। इसमें विकास और आत्मरक्षा के अनुसार अंग का बनना और आवश्यकता न होने पर लुप्त होने की मान्यता का क्या मतलब है?

वेद विज्ञान

विकासवाद और ईश्वरवाद दोनों एक दूसरे के विरोधी हैं। विकासवाद जहां मान्यता और अनुमान पर आधारित है वहीं ईश्वरवाद ईश्वर द्धारा रचित सृष्टि के नियमों

पर आधारित है। वेद के अनुसार सृष्टि का निर्माण सृष्टिकर्ता परमात्मा के द्वारा हुआ। यह सारा ब्रह्माण्ड उस परमेश्वर की कृति है। इसमें जड़, चेतन, वनस्पति, ओषधि, कीट–पतंगें, पशु–पक्षी और मनुष्य असंख्य प्राणी और अप्राणी सम्मिलित हैं। सारा ब्राह्माण्ड नियमों पर आधारित है। तीन सत्ताएं अनादि हैं–जीवात्मा, परमात्मा और प्रकृति। जीवात्मा स्वभावतः उन्नति नहीं करता। यदि करता होता तो करोड़ों वर्षों में उसके ज्ञान की पराकाष्ठा होती। अनगिनत लोग सर्वज्ञ हो गए होते। किन्तु वास्तविकता यह है कि यदि बच्चों को स्वतंत्र छोड़ दिया जाए, उसको शिक्षा या ज्ञान देने का कोई उपक्रम न किया जाए तो वे उन्नति के स्थान पर अवनति करेंगे। जंगल में छोड़ा हुआ बालक भेड़िए के संग रहकर भेड़िए के स्वभाव का बना, मनुष्य की तरह न तो वह खाता था और न तो उसकी भाषा ही मनुष्य जैसी बनी। इसका अर्थ हुआ बिना संस्कार, शिक्षा और प्रेरणा दिए कोई भी बच्चा ज्ञानवान नहीं बन सकता है। आधुनिक मानव समाज विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति किया। सुख के साधन और संसाधनों से वह अधिक मालामाल है, लेकिन सद्‌गुणों और मानवीय व्यवहार में वह आदि मनाव से अवनति की ओर गया है। इस अंक में बस यहां तक।

जो उपकारी कर्म को करते कैसे बुरे होंगे;
मिथ्यावचनी जाने कितनी बार मरें होंगे।

शिक्षा विद्या से जिस बचपन को सींचा जाता;
भीषण ताप में भी पौधे के पत्ते हरे होगें।

जिस यौवन में रंगरलियों ने सदा बसेरा डाला;
उस पर दुख चिंता के बादल खूब घिरे होंगे।

पति पत्नी जो विश्वाश तोड़ के द्वेष को रखते है;
एक दूजे की नजरों में कितनी बार गिरे होंगे।

बूढ़े मात पिता को जिसने बेदर्दी से रुलाया;
अपने बुढापे में आंखों से आँसू झरें होंगे।

राम सा बन पर 'हित' में जो भी अन्याय से लड़ता;
युग युग ने स्वागत में उसके दीप धरें होंगे।।

मैं अपनी गागर का पानी

बांधे पांव मोह ने मेरे, माया ने हथकड़ी लगाई।
एक बूंद पानी की मेरी,गागर से ना बाहर आई।।
मोह नहीं छूटा गागर से,अपनी दुनियां गागर जानी।
मैं अपनी गागर का पानी।।

सोचा शमशीरों पर चढ़कर, मैं वीरों की शान बढ़ाएं।
बनूं पसीना मेहनत कश का, बेशक मैं खारा हो जाऊं।।
पर मैं ढक्कन खोल न पाया, अंदर सड़ती रही जवानी।
मैं अपनी गागर का पानी ।।

सोचा उतर सीप के अंदर, मोती का पानी बन जाऊं।
जाऊं उतर आंख में सबके, लज्जा के दो दीप जलाऊं।।
पर मैं निकल न पाया बाहर, मेरे मन ने बात न मानी ।
मैं अपनी गागर का पानी।।

मैं भी प्यास बुझा सकता था, कभी किसी के अंतरमन की।
कोशिश की पर खोल न पाया, मैं कुण्डी अपने ढक्कन की।।
रहा देखता मैं प्यासों को, यद्यपि था गगरी में पानी ।
मैं अपनी गागर का पानी ।।

पड़ा रहा गागर में लेकिन, काम किसीके कभी न आया।
देखे लोग तड़पते लेकिन, एक बूंद जल नहीं पिलाया।।
ढक्कन खोल न पाया अपना, चली खूब मन की मनमानी।
मैं अपनी गागर का पानी ।।

यद्यपि इच्छा मेरी भी थी, गागर से सागर बन जाऊं।
अपना पूर्ण समर्पण करके, मैं सागर को गले लगाऊं।।
लेकिन मिलने के क्षण मन ने, दुहराई अस्तित्व कहानी ।
मैं अपनी गागर का पानी ।।

बूंद–बूंद नित घट–घट गया, व्यर्थ हो गया संग्रह सारा।
रिस रिस सूख गया सारा जल, न फूटी करुणा की धारा।।
अब रीती गागर लेकर मैं, डाल रहा हूं आज रवानी।
मैं अपनी गागर का पानी ।।

– ✍ अनंग पाल सिंह 'अनंग'
मोबाइल नं – ९४२५७०१४१

THIRD DUTY: SERVICE TO PARENTS

– ✍ Dr. Roop Chandra 'Deepak'
Lucknow (U.P.)
Mob. 9839181690

The Sanskrit name of the Third Great Duty is 'Pitriyajna'. It has two parts to perform—Service to Parents, and Rearing of Children. Parents turn a helpless child into a wise man through their love, care and sacrifices. They nurse the children without any thought of return. Their benefaction creates a great moral debt on the children. So, the grown up children must serve the parents with a sense of moral duty combined with the feeling of gratitude.

The Mahabharata says, 'Mother is heavier than the Earth and Father higher than the Sky.' In Vedic Culture parents are regarded and revered next to God. A baby's initial development occurs inside the mother's womb and it receives all nutrition through the mother's body, really a heavenly abode for the baby.

Every mother, human or animal, behaves almost alike towards her progeny. For example, when a tigress catches deers and goates by their neck, they lose their lives. The same tigress catches her cub by its neck, springs or swims carrying it to places, without least harming it. Thus the mother can rightly be called a manifestation of love and sacrifice.

The mother nurses her child when the child needs it most, and her role goes down and down as the child grows up and up. One may realise the fact that milk flows from a mother's body as many times as she becomes a mother. The physical science should note it carefully that the woman has been taking the same carbohydrates and proteins during her maternity and otherwise; but the milk-stream flows in her bosom only during her maternity, howsomany times it happens to her or not even once in life.

The Nirukta Shastram says, 'Mata nirmata bhavati' or Mother is the builder of child's character. When the mother suckles to the baby, she not only pours milk into its body but also pours her culture into its mind. The impressions she prints on its mind go much deep into its personality and character.

Motherhood is the most exalted position for a woman. She can do her best with least criticism and most success in this very position. So, it is her first and foremost duty to rear the children her best way. She should impart them with basic education and good habits. She can thus create the greatest difference between an animal and a man. She has the best raw

material in her pious hands which she must turn into a noble being, and emerge as a great sculptor.

According to the Nirukta, 'Pati rakshati iti Pita' or Father is he, who protects. Father, the most esteemed relation of the world, is bound by several duties and the son must feel grateful to him in return. The physical things given by the father can be responded to by the son's physical things later on. But Father's love, anxiety, supervision, protection, strife, guidance and sacrifice can only be responded to by a sense of respect, honour, gratitude, indebtedness and service only, which are the noble duties of the sons and children.

The promotion of children is possible only when the parents perform their duties sincerely. First, they must provide them a sound body which forms a sound basis for a healthy and long life. Secondly, the children should be educated well to become prudent, sensible, discriminating between good and bad, just and men of knowledge and learning. Thirdly, the children should be given the right knowledge of God and be shown the right path to His proper worship. Fourthly, the parents should make the children good citizens, who are courteous, good mannered, law abiding, helpful to others, sensitive to public convenience and responsible to the nation.

Fifthly, children must possess a good moral character. They should live up to the moral values and principles of social justice. In fact, it is character, that can be termed as the fragrance of soul. Sixthly, children should be enabled to develop a good economy, since good principles, moral values, sound ideas and creative thoughts, all become inconsistent without a sound economy. Seventhly, parents should ensure good consorts for their sons and daughters. Eighthly, parents should solemnise the Vedic sacraments for the all-round development of their progeny. These sacraments are:

(1) Garbhadhan, (2) Punsavan,
(3) Simantonnayan, (4) Jatakarma,
(5) Namakaran, (6) Nishkraman,
(7) Annaprashan, (8) Mundan,
(9) Karnavedha, (10) Upanayan,
(11) Vedarambha, (12) Samavartan,
(13) Vivah; etc.

Parents do a lot of service and benefaction to their children for which the latter earn a moral indebtedness to them. It is obligatory for the sons and daughters to pay up the parental debt gracefully. The auspicious intentions with which the parents rear their children, creates the debt of honour. Some scholars say that this debt of honour cannot be repaid. In fact, in serving the parents politely with the thought that it cannot be repaid, and also rearing their own children likewise, the parental debt (Pitri-rin) is automatically repaid.

Service to Parents can be rendered like

following:-

(1) Always live with your parents with respect, peace and affection. Attend to their needs personally as far as possible. Have some patient conversation with them daily.

(2) Avoid their short-comings if any or many. Never feel ill of their oldage or mental looseness.

(3) Always feel indebted to them and never react. Behave with courtesy and politeness.

(4) Consult them regularly. Their experience may always prove to be an asset.

(5) Share their responsibilities as much as possible.

(6) Always do noble and great deeds so as to give them real satisfaction.

(7) Never commit any mean or debased mistake that could hurt them.

(8) Try your best to bring honour to their name or at least to maintain it.

(9) Render them all your service during their lifetime, and postpone nothing for a later period.

(10) Complete their incomplete work and continue doing so even after their life.

अध्रुवे हि शरीरे यो न करोति तपोऽर्जनम्।
स पश्चात्तप्यते मूढो मृते गत्वाऽऽत्मनो गतिम्।।

यह शरीर क्षणभङ्गुर है। जो मनुष्य इसे पाकर तप का अनुष्ठान नहीं करता, वह मूर्ख मरने के पश्चात् जब उसे अपने कर्मों का फल मिलता है, तब पश्चात्ताप करता है।

वेदोपनिषदम्

मोक्ष का संकल्प

• वैदिक संस्कृति में जीवन की समस्त अवस्थाओं की व्याख्या की गयी है।

• सब अवस्थाओं में सबसे ऊँची है – जीव की मुक्तावस्था या मोक्ष-अवस्था।

• विद्याओं में परा विद्या का विषय, दर्शनशास्त्र में सूक्ष्मतम 'अपवर्ग' और योग में समाधि-अवस्था का प्रतिफल यह दु:खमुक्त आनन्दयुक्त 'मोक्ष' ही है।

• किसी जीव का कोई भी सिद्धान्त हो; बौद्धिक रूप से मोक्ष को माने या न माने; सब जीवों का चरम लक्ष्य मोक्ष ही है – जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा पाना।

• सुखस्यानन्तरं दु:खं दु:खस्यानन्तरं सुखम्य संसार में बारी से सुख-दु:ख आते रहते हैं।

• मोक्ष की प्राप्ति सर्वाधिक कठिन है; विद्या, मुख्यत: अध्यात्मविद्या प्राप्त करके; स्वार्थवृत्ति और अहंवृत्ति का त्याग करके; सब प्रकार की सेवा एवं तपस्या करके; सुख-दु:ख, मान-अपमान में एक रहकर; ईश्वर की भक्ति तथा आज्ञापालन करके; प्रभुसान्निध्य के अलावा कुछ न चाहते हुए; उसे आत्म-अर्पण करने से मोक्ष मिलता है।

• सृष्टि के वर्त्तमान चक्र में फिर न आना; हे मन! यह मोक्ष है; इसका संकल्प कर।

– ✍ आचार्य रूपचन्द्र 'दीपक'

प्रकृति, विकृति और संस्कृति के मूलार्थ को समझें

–✍ डॉ विक्रम कुमार 'विवेकी'

*'कृति' का अर्थ रचना, निर्माण, ग्रंथ और पहचान माना जाता है। कृति से कृतित्व शब्द बना है। कृतित्व से ही कीर्ति मिलती है। सु–कृतित्व से सुकीर्ति मिलती है और कु–कृतित्व से कुकीर्ति मिलती है। मिलती अवश्य है। कोई भी कर्म निरर्थक हो ही नहीं सकता। और मनुष्य बिना कर्म किए रह नहीं सकता। जन्म से लेकर मृत्यु तक मानव जो कर्म करता है, वे सभी कभी उसके 'कृतित्व' बन जाते हैं। यही कृतित्व मृत्यु के पश्चात उसकी पहचान बनाए रखते हैं। 'प्र' का अर्थ 'विशेष' या 'अच्छी तरह से' होता है। शब्दों के अर्थों की ठीक–ठीक जानकारी न होने के कारण सामान्यतौर पर अर्थ का अनर्थ या व्यर्थ समझ बैठते हैं। इसलिए ठीक–ठीक जानकारी का होना आवश्यक है। प्रकृति, विकृति और संस्कृति के सम्बंध में ठीक–ठीक जानकारी उसके मूलार्थ में बहुत कम लोगों को है। सामान्य व्यक्ति को तो बहुत ही कम। यही कारण लोगों को कई शब्दों के सम्बंध में भ्रम या संदेह हो जाता है। इसलिए शब्द की ठीक जानकारी के साथ उसका मूलार्थ और शब्दार्थ की भी जानकारी होनी आवश्यक है। प्रस्तुत लेख में वैदिक परिपेक्ष्य में प्रकृति, विकृति और संस्कृति के मूलार्थ, शब्दार्थ और भावार्थ को रखने का प्रयास किया गया है। यह लेख प्रसिद्ध वैदिक विद्वान् और लेखक डॉ. विक्रम कुमार विवेकी की पुस्तक 'वेदों की ओर' का अंश है। आशा है पाठकों को पसंद आएगा। – **सम्पादक***

शब्दों की मर्यादाएं और अर्थ –

संस्कृत और हिंदी भाषाओं की लिपि देवनागरी है। देवनागरी की यह विशेषता है कि इसके अक्षर लिखने और पढ़ने में एक जैसे होते हैं। संस्कृत से हिंदी में आए शब्द उसके मूलार्थ के साथ प्रयोग करने की परिपाटी है–कुछ अपवादों को छोड़कर। हमारे कहने का तात्पर्य शब्दों की अपनी मर्यादाएं होती हैं। संस्कृति एक अत्यन्त व्यापक शब्द है। इसको समझने के लिए बहुत कुछ समझना पड़ता है। संस्कृति के सम्बंध में वेद में व्यापक चर्चा की गई है। इसी तरह प्रकृति के सम्बंध में भी। विकृति किसी भी कृति का विगड़ा स्वरूप है। हम यहाँ इन तीनों के सम्बंध में चर्चा कर रहे हैं।

यजुर्वेद के चालिस वें अध्याय (ईशोपनिषद्) में एक ऋचा है, जो विकृति के सुनहरे ढक्कन को हटाकर मूल संस्कृति को पहचानने का संदेश देती है।

हिरण्मयेनप पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये।

अर्थात् है मानव, तू सोने की तरह चमकने वाले इस विकृति रूपी आवरण को हटाकर मूलसत्य, मूलधर्म एवं मूलसंस्कृति को जानने का प्रयास कर। राजा भर्तृहरि चले जा रहे थे। मार्ग में सड़क पर पड़े चमकते हुए, मोती से रंग वाले सिक्के को उठाने के लिए झुके तो अपनी अंगुलियाँ बलगम में धंसा बैठे। खुद पर हँसने लगे। क्योंकि यह महाभ्रम था। विकृति में संस्कृति का भ्रम था। बलगम में सिक्के का भ्रम था।

विकृति और संस्कृति को समझ पाना अति सरल नहीं है। इसे बुद्धिजीवी ही समझ पाते हैं। विवेकहीन व्यक्ति दोनों के अन्तर को न समझकर विकृति के मकड़जाल में उलझ जाते हैं। तीन शब्दों को पास–पास रखकर विचारने से मूलसंस्कृति को समझने में बाधक अनेक भ्रान्तियाँ स्वतः दूर हो जाती हैं। वे तीन शब्द है– ***प्रकृति, विकृति और संस्कृति।*** नाना प्रकार की अन्न दालें, सब्जियाँ आदि रॉ मैटेरियल ***प्रकृति*** है। इन्हें रसोई में ले जाकर भोक्ता के लिए उपयोगी व लाभकारी खाद्य बना दिया गया, यह ***संस्कृति*** है। रातभर भोक्ता के पेट में रहकर प्रातःकाल इस की जो दशा हुई, वह ***विकृति*** है। इस मलरूपी विकृति को भी संस्कृति समझ लेना शूकर संस्कृति है। कहने का तात्पर्य यह है कि संस्कृति संग्राह्य है और विकृति त्यागने योग्य है।

इसी संदर्भ में सभ्यता शब्द के अर्थ को भी समझ लेना चाहिए। सभ्यता और संस्कृति पर्यायवाची शब्द कदापि नहीं हैं। इन दोनों में एक मौलिक अन्तर है।

संस्कृति और सभ्यता के बीच लक्ष्मणरेखा के रूप में एक झीना सा पर्दा होता है। इस पार संस्कृति तो उस पार सभ्यता होती है। कोई सभ्यता जब उदात्त रूप को धारण कर समाज–निर्माता बन जाती है तो वह संस्कृति में ही समाविष्ट हो जाती है। विलीन होकर वह मूल संस्कृति का ही अंग बन जाती है। इसी तरह मूल संस्कृतिको कोई तत्त्व जब किसी सभ्यता से प्रभावित होकर अपनी मूल 'सर्जक–धर्मिता' को छोड़ देता है तो संस्कृति का अंग होता हुआ भी सभ्यता के क्षेत्रमें सिमट जाता है। स्वधर्म को छोड़ता हुआ वह तत्त्व सभ्यता में परिणत हो जाता है।

संस्कृति संस्कृति होती है और सभ्यताएँ विकृतियाँ होती हैं। संस्कृति एक होती है तो सभ्यताएँ पृथक्–पृथक् अनेक होती हैं – भारतीय सभ्यता, चीनी–सभ्यता, पाश्चात्य सभ्यता, आधुनिक सभ्यता आदि। 'संस्कृति' शब्द के आगे–पीछे विशेषण जोड़कर उसे खण्ड–खण्ड करना अज्ञानता है। मानव की संस्कृति एक है, जिसे मूल–संस्कृति कहते हैं। हाँ, इस संस्कृति के मूल तत्त्व या आधार अनेक होते हैं जो इसकी शाखा–प्रशाखाएँ मानी जाती हैं। जैसे–त्यागी, दया, क्षमा, करुणा, ममता, सहानुभूति, मानवता, सहृदयता, परोपकार, अहिंसा, धैर्य, सन्तोष आदि। हिन्दू, मूस्लिम, क्खि, ईसाई सभी के लिए संस्कृति के ये मूल तत्त्व अनिवार्य हैं। जबकि इन की सभ्यता अलग–अलग होती हैं। सभ्यता को संस्कृति कहना या संस्कृति को सभ्यता कहना दोनों शब्दों के साथ बलात्कार है। ऐसा प्रयोग परवर्त्तिकाल का ही प्रभाव है। यही अन्याय 'धर्म' शब्द के साथ भी हुआ है, जिसके कारण कुछ शब्दों के भावग्रहण में सब गुमराह हैं।

'नृत्य' एक कला है। कला भी संस्कृति का मूल तत्त्व है। यह कला जब कला के ही रूप में प्रस्तुत होती हुई समाज–निर्माण में सहयोगिनी बनी रहती है तो यह संस्कृति का ही अंग मानी जाती है। परन्तु यही कला जब कला के नाम पर नग्नता को अपनाकर कलुषित होने लगती है जब संस्कृति के क्षेत्र से खिसक कर यह सभ्यता की सीमा में ही सिमट जाती है और पाश्चात्य सभ्यता के नाम से ही जानी जाती है।

नारी वैदिक संस्कृति का केन्द्रीय विन्दु है। युवावस्था के पड़ाव पर अर्धांगिनी के रूप में एक ही नारी को जाया मानकर अन्य समस्त स्त्रीजाति को माँ, बहन व पुत्री के रूप में देखना, वैदिक संस्कृति है। विदेशी सभ्यता की ऐनक लगाकर सावन के अन्धे की तरह प्रत्येक अंगना को गणिकाभाव से निहारना संस्कृति नहीं अपितु पाश्चात्य या आधुनिक सभ्यता है।

विविध सभ्यताओं की एक लम्बी लिस्ट बनाई जा सकती है। संस्कृति के किसी विशिष्ट तत्त्व के होने के कारण कोई सभ्यता अपनाने के योग्य हो सकती है तो नितान्त विकृतियों से ही परिपूर्ण होने के कारण कोई सभ्यता सर्वथा त्याज्य हो सकती है।

अन्ततः हम चाहे मैट्रिक पास हैं या बीए पास, एम.ए पास हैं या पीएचडी पास, यदि वैदिक ऋचाओं के अनुसार संस्कृति के आस–पास नहीं हैं तो विकृतियों से सारा समाज ऐसे ढह जायेगा, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। इति।

महर्षि दयानन्द : समाज में ज्ञान और विद्या की ज्योति जलाने वाले

दूसरों की उन्नति, प्रगति और विकास को ही अपनी उन्नति और विकास मानना मानव जीवन का मकसद बनाना चाहिए। इससे जहां परहित होता है वहीं पर स्वहित भी होता जाता है। जहां भी सामाजिक कार्य हों वहां पर अपने निहित स्वार्थ को तज सामाजिक स्वार्थ को प्राथमिकता देनी चाहिए। महर्षि दयानन्द ने ऐसे सर्वहितकारी विचार तब दिए थे जब भारतीय समाज में अंधविश्वास, पाखंड,कुरीतियां और स्वार्थवादी प्रवृतियों का बोल बाला था। दयानन्द ने निर्भीकता से कहा– सत्य, ज्ञान और विद्या मानव उन्नति और हित के आधार हैं। सत्य के बिना न तो ज्ञान की अहमियत है और न तो विद्या की ही। उन्होंने वेद को सत्य, ज्ञान और विद्या का आधार बताया। वह अपने उपदेशों, उद्‌बोधनों और प्रवचनों में वेद विद्या को प्रमुखता देते थे। उन्होंने ने कहा, वेद सत्य, ज्ञान और विद्या के त्रिवेणी हैं। जो इस त्रिवेणी में स्नान कर लेता है, उसके मन, विचार और कार्य से अज्ञान, अविद्या और असत्य समाप्त हो जाते हैं। मानव मन को चंगा करने और जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष को हासिल करने के लिए वेद का रास्ता ही सबसे सहज, सरल और पवित्र है। उन्होंने कहा, वेद ऐसे ज्ञान, विद्या और विज्ञान के आधार स्तम्भ हैं जहां से सभी तरह की विद्याओं और विज्ञानों को उदगम होता है।

उपनिषदों में अंधकार के पार देखने वाले और अंधकार के पार जाकर प्रकाश में विचरण करने वाले साधक को 'स्कंद' कहा गया है। जो मानव सभी तरह की बुराइयों, अंधकारों, अज्ञानता और संस्कारों से छूट जाता है, वह परमपावन ज्ञानमयी बन जाता है। दयानन्द ऐसे ही परम पावन ज्ञानमयी साधक थे। उनकी साधना ऋद्धियों–सिद्धयों को प्राप्त करने के लिए नहीं थी, बल्कि अंधकार, अविद्या, दुख, पाप, असत्य और पाखण्ड में फंसे व्यक्ति को बाहर निकालने के लिए थी। वह ऐसे युग निर्माता और समाज सुधारक थे जिनके रगों में सर्वहित और सर्वदुख निवारण का रक्त प्रवाहित हो रहा था।

महर्षि दयानन्द ने कहा, वेद सभी विद्याओं, विज्ञानों और विचारों के अंतिम प्रमाण हैं। वेद ऐसे ज्ञान रश्मि के स्रोत हैं जहां मानव के आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तापों और और विषयों को कसौटी प्रदान करते हैं। महर्षि ने समाज सुधार के अनगिनत कार्य तो किए ही आजादी के लिए अनगिनत स्वतंत्रता संग्राम सेनानी भी तैयार किए। वह स्वभाषा, स्वसंस्कृति, स्वधर्म, स्वराष्ट्र, स्वाभिमान, स्वगौरव, स्वशिक्षा, स्वतंत्रता और शाकाहार को समाज का आधार मानते थे। उनकी आंखों में सभी मानवों के लिए प्रेम, करुणा, दया, सहिष्णुता और कल्याण के लिए स्थान था। वह सब का भला चाहते थे, भले ही उन्हें उनके लिए दुख सहने पड़ते हों। असहायों, दुखियों, रोगियों, दलितों, गरीबों और अंधकार में भटक रहे अज्ञानी लोगों के लिए उन्होंने वह सब कुछ किया जो वह कर सकते थे। सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका और वेदांजलि में महर्षि दयानन्द ने मानव के जीवन के हर पक्ष को मजबूत बनाने और उन्नति करने के सभी तरह के सूत्र और विचार दिए हैं। वह मत मतांतरों की आलोचना उनके सुधार के मद्‌देजनर करते हैं। वह जितना हिंदुओं के सुधार की बात करते हैं उनता ही मूसलमानों, ईसाइयों, बौद्धों, सिखों और जैनियों के भी।

महर्षि का सारा जीवन सत्य, ज्ञान, विद्या और सुधार के कार्य में बीता। इसके लिए उन्होंने अपनी सारी ऊर्जा लगा दी। वह कहते हैं–सत्य, शुभ, ज्ञान, विज्ञान और तर्क की कसौटी पर कसकर ही किसी के विचारों को मानना चाहिए। अपने स्वार्थ और मान्यता के वशीभूत होकर किसी का अहित करना पाप है। जन्मगत जात–पांत, भेदभाव, छुआछूत और अन्य बुराइयों से दूर रहते हुए सब के हित में जो विचार, कार्य और उद्‌देश्य हों डनहें ही मानना चाहिए। महर्षि दयानन्द का अंतःकरण परमपावन, करुणामय और साहिष्णु था। उन्होंने कभी अपने घातक को सजा नहीं दी या दिलवाई।

समाज, संस्कृति, धर्म, अध्यात्म, विज्ञान, ज्ञान, विद्या और राजनीति सहित अनेक विषयों पर महर्षि दयानन्द ने अपने विचार सत्यार्थ प्रकाश में व्यक्त किए हैं। ईश्वर, जीव और प्रकृति जैसे सबसे विवादित विषयों कोभी उन्होंने अपनी पुस्तकों में वेद और तर्क के आधार पर परिभाषित और व्याख्यायित किया है। दुनिया में सबसे अधिक विवाद और झगड़े ईश्वर, धर्म और मत–पंथ पर रह हैं। महर्षि ने इन पर खुलकर अपने विचार सत्यार्थ प्रकाश में व्यक्त किए हैं। वह कहते हैं, पहले ईश्वर, जीव और मत–पंथों को जानों,समझों फिर मानो। वह कबीर की तरह गुरु को खूब ठोक बजाकर ही मानने पर जोर दिया है। गुरु कौन? को उन्होंने गुरु के लक्षण में तर्क के आधार पर बताए है। इसी तरह, प्रत्येक कार्य, विचार और विषय को भी मानने के पहले उन्हें खूब समझ लेने पर जोर देते हैं।

महर्षि दयानन्द कहते हैं, गुलामी केवल राजनीतिक और देशगत ही नहीं होती बल्कि धार्मिक, सांस्कृतिक, भाषाई, विचारात्मक, आर्थिक और शिक्षात्मक भी होती है। अपने विचारों को गुलाम न बनाओं बल्कि विचारों को खुला छोड़ दो और उनमें उदारता का समावेश करो।

भोजन करके सोना, चिन्ता करते हुए भोजन करना, भोजन करते ही शौच जाना या शौच से आते ही भोजन करना, भोजन के अन्त में जल पीना, भूख लगने पर भोजन न करना,भूख मर जाए तब भोजन करना, ठीक से चबाए बिना ही निगल जाना, भोजन करके स्नान करना, तीन घंटे के अन्दर दोबारा भोजन करना और आठ घंटे से ज्यादा भूखे रहना, मात्रा से अधिक भोजन करना – ये सब काम अपने स्वास्थ्य से दुश्मनी करने के बराबर है।

विभ्रम

जब भी मानवता ने, करी करुण पुकार
यह सभ्यता सदा, लुटाती वरदान है ।१।

हम हैं लेकर चले, सत्य की ज्योति अखंड
विश्व मानता आया, पूज्य एवं महान् है ।२।

किन्तु अभी हुआ छाया,कैसा यह विभ्रम
अपनी संस्कृति का,कुछ न शेष भान है ।३।

चकित होकर मात्र, बाहरी आवरण से
दीन हीन जन को, मानते धनवान हैं ।४।

छोड़ दी थाती अपनी,भुला दिया है गौरव
अनुकरण में ही, बची हमारी शान है ।५।

कोने में उदास बैठी, जो परंपरा घर की
पराये संस्कारों का, भाने लगा सम्मान है ।६।

खुद पर प्रश्न चिह्न, संवाहक प्रगति का,
मूर्ख घोषित हुआ, संत और सुजान है ।७।

–✍ क्षितिज जैन "अनघ"

पण्डित प्रकाश चन्द्र कविरत्न

– ✍ डॉ. अशोक आर्य

आर्य समाज के शिरोमणि कवि, व्याख्याता और भजनोपदेशक पण्डित प्रकाश चन्द जी कविरत्न के पिता पंडित बिहारीलाल जी, उत्तर प्रदेश में स्थित अलीगढ़ नगर के निवासी थे किन्तु किन्हीं कारणों से वह अजमेर आ गए, इन पंडित बिहारीलाल जी के यहाँ ही सन् १९०३ ईस्वी को राजस्थान के इस नगर अजमेर में ही आपका जन्म हुआ। पिताजी आरम्भ से ही घोर पौराणिक थे। आपकी आरम्भिक शिक्षा डी ए वी हाई स्कूल में हुई। अपनी शिक्षा पूर्ण कर आप ने नौकरी प्राप्त कर आर्थिक रूप से पिता जी का सहयोग करना आरम्भ कर दिया।

आर्य समाज में प्रवेश

आपका संपर्क किसी प्रकार आर्य समाज के प्रख्यात् उपदेशक पंडित राम सहाय जी (जिन्होंने बाद में संन्यास ले लिया और नया नाम स्वामी ओमभक्त हुआ) से संपर्क हुआ और उन्हीं के प्रभाव से आप की आस्था आर्य समाज के प्रति हुई। इस प्रकार आप आर्य समाज के अनन्य सेवक बन गए। आप में आर्य समाज के प्रति इस प्रकार की आस्था बनी कि फिर आपने आर्य समाज की सेवा से कभी अपना हाथ पीछे नहीं खींचा और आजीवन व्याख्यानों, लेखन और भजनों के अतिरिक्त अपने कवि रूप में भी आर्य समाज की सेवा करते रहे।

राष्ट्रिय संग्राम में प्रवेश

जो आर्य समाज के साथ जुड़ जाता है, उसमें राष्ट्र के प्रति प्रेम की भावना तो स्वयमेव ही आ जाती है किन्तु जीवन में अनेक बार कुछ इस प्रकार की घटनाएँ आती है, जिनके कारण जीवन में अत्यधिक परिवर्तन आ जाता है। आपके जीवन में भी एक ऐसी घटना ने ही क्रान्ति ला दी। आपने जब जलियांवाला बाग में अंग्रेज द्वारा निहत्थे भारतीयों की नृशंस हत्या का समाचार सुना तो आपका हृदय दहल उठा। अत्यंत आहत होकर आपने देश की स्वाधीनता के लिए चल रहे आन्दोलनों का भाग बनने का निर्णय लिया ओर यह निर्णय लेते ही आपने अपनी नौकरी से त्यागा पत्र दे दिया। अब आप स्वच्छंद होकर आर्य समाज के साथ ही साथ देश की स्वाधीनता के लिए भी कार्य करने लगे।

हिन्दुओं को ईसाई होने से बचाया

जब आपने देश सेवा का व्रत लिया ही था कि उन्हीं दिनों शुक्ल तीर्थ (यह गुजरात में लगने वाला एक मेला होता था) के अवसर पर ईसाई लोग भोले भाले हिन्दू लोगों को ईसाई बनाने में लगे हुए थे। आप ने इस दृश्य को अपनी आँखों से देखा तो एक बार फिर से आपके अन्दर का धर्म तीव्र रूप से जाग उठा तथा इन हिन्दुओं की रक्षा के लिए आपके अन्दर आग जल उठी। अपने अन्दर की इस वेदना को दूर करने के लिए आपने आर्य समाज के कुछ कार्यकर्ताओं को अपने साठ लिया और ईसाई होने जा रहे हिदुओं को धर्म का मर्म समझा कर उन्हें ईसाई बनने से बचाया।

मालाबार में हिन्दुओं की रक्षा

इस मेले के कुछ ही समय बाद सन् १९२५ में केरल में एक भयानक घटना हुई। इस घटना के अंतर्गत केरल के मोपला नामक मुसलमानों ने हिन्दुओं पर आक्रमण कर दिया। बहुत से हिन्दुओं को मार डाला गया। बहुत से हिन्दू मुसलमान बना लिए गए तथा बहुत से बच्चे अनाथ हो गए। जब आर्य समाज ने इस सम्बन्ध में महात्मा गांधी जी से बात की तो गांधी जी का कहना था कि यह तो मुसलमानों का धर्म है। उन्हें यह सब कार्य करने से हम नहीं रोक सकते क्योंकि उनके धर्म ग्रन्थ में काफिरों को मारने की आज्ञा दी गई है। इस पर आर्य समाज ने स्वयं ही अपने बल पर मोपला आन्दोलन के अवसर पर हिन्दुओं की रक्षा का कार्य आरम्भ किया। उन्हें भोजन तथा वस्त्रादि से सहयोग दिया गया। अनाथ हुए लगभग ५००० बच्चों को लाहौर लाया गया। उनके लिए अनाथालय स्थापित किया गया और इस अनाथालय से उन बच्चों का पालन किया गया। इस प्रकार बहुत से नहीं बल्कि हजारों हिन्दुओं को

मुसलमान होने से बचाया गया। इस सेवा कार्य में भी पंडित जी सबसे आग्रिम पंक्ति में खड़े होकर सेवा करते दिखाई दिए।

समाज सुधार के कार्यों में लगे

कोई व्यक्ति आर्य समाज में प्रवेश करे और वह देश सेवा तथा समाज सुधार के कार्यों में न लगे यह तो कभी स्वप्न में भी नहीं हो सकता। अतः आप में भी वैदिक संस्कृति की रक्षा की भावना भी जोर पकड़ने लगीद्य अतः आर्य समाज ने जो कुरीतियों के नाश, अंधविश्वासों के विरोध में, छूआछूत के खण्डन में, नारी शिक्षा, बाल विवाह, विधवा उद्धार, आभू विवाह, गो रक्षा, वेद प्रचार आदि के जो कार्य चला रखे थे, उन्हें देख कर आपका मन भी डोल गया और इन कार्यों को करने के लिए लालायित होने लगे। परिणाम स्वरूप आपने भी समाज सुधार के इन कार्यों में पूर्ण रूप से समर्पित होकर अपना सहयोग देना आरम्भ कर दिया। उस समय आर्य समाज के जो–जो भी बड़े नेता, विद्वान्, साधू संन्यासी आदि थे, उन सब का आपको आशीर्वाद मिलने लगा। मुख्य रूप से स्वामी श्राद्धानन्द सरस्वती जी तथा पण्डित शंकर देव विद्यालंकार जी आपकी प्रेरणा का कारण बने।

आर्य समाज के प्रचारक

यह आर्य समाज के उत्थान का काल था। अतः इस समय कोई आर्य समाज का सदस्य है या नहीं किन्तु सब लोग भली प्रकार से आर्य समाज के कार्यों से परीचित हो चुके थे और अनेक लोग आर्य समाज की इस नई दिशा को स्वीकार कर इसे अपनाने में लगे हुए थे। इस अवस्था में आर्य समाज को प्रचारकों की महती आवश्यका थी। अतः जब आप अजमेर वापिस लौट कर आये तो पंडित रामसहाय जी ने आपको आर्य समाज का प्रचारक बनने के लिए प्रेरित किया। उनकी प्रेरणा से आपने उनका यह सुझाव अपने लिए एक आदेश के रूप में स्वीकार किया और उसी समय से आर्य समाज के प्रचारक बन कर आर्य समाज का सार्वजनिक रूप में प्रचार करने लगे।

इन दिनों आर्य समाज के सुप्रसिद्ध नेता कुंवर चान्द्करण शारदा जी तथा श्री पण्डित जियालाल जी अजमेर में ही निवास कर रहे थे। इनके सहयोग से तथा इनके ही साथ आप दयानन्द जन्म शताब्दी समारोह में भाग लेने के लिए मथुरा गए। मथुरा जाने से पूर्व आपने इस शताब्दी में गाने के लिए एक उत्तम गीत की रचा की। जब आपने यह गीत वहां पर गाया तो जन–जन ने इस गीत को एसा पकड़ा कि आज इस गीत को लिखे लगभग एक शताब्दी पूर्ण होने जा रही है किन्तु आज भी आर्यजनों में इस गीत के प्रती वैसी की वैसी ही श्रद्धा बनी हुई है और आर्य लोग इस गीत को आज भी झूम–झूम कर गाते दिखाई देते है। इस गीत की प्रथम पंक्तियाँ इस प्रकार हैः–

वेदों का डंका आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने।
हर जगह ओउम् का झण्डा फिर फहरा दिया ऋषि दयानन्द ने।

सन् १९७५ में विवाहोपरांत जब हम आपका आशीर्वाद लेने अजमेर गए तो आपने इस गीत का मुझे भी हरमोनियम के साथ गाने का अभ्यास करवाया था। यह गीत ही आपकी सर्वाधिक लोकप्रियता का मुख्य कारण बना। इस उत्सव के अवसर पर आपको हिंदी के प्रख्यात् कवि पंडित नाथू राम शंकर जी से भी मिलने का अवसर मिला। (जब मैं १९९२ में अलीगढ यूनिवर्सिटी में रिफ्रेशर कोर्स करने गया तो मुझे पता लगा कि कवि शंकर जी का गाँव यहाँ से पास ही है तो मैंने वहां जाने का विचार बनाया किन्तु तब मुझे बताया गया है कि उनका पूरा परिवार यहाँ से जा चुका है तो मुझे यह विचार छोड़ना पडा) पंडित नाथूराम शंकर जी के दर्शन मात्र का आप पर एसा प्रभाव पडा कि दर्शन करते ही आपने उन्हें अपना काव्य गुरु मान लिया। इस का ही परिणाम था कि आपमें उत्तम कवि होने के गुणों का विकास हुआ।

सिनेमा में जाने से इनकार

१९७५ में जब देश में आपातकाल लागू किया गया था, उस समय मैं अजमेर आपके निवास पर परिवार सहित रुका हुआ था। मेरे विवाह में आपका भी सहयोग था, इस कारण विवाहोपरांत हम आपका आशीर्वाद लेने गये थे। इस अवसर पर आपने बताया कि सिनेमा जगत् से मुझे गीत लिखने और गाने के लिए निमंत्रण आया था किन्तु मैंने उस निमंत्रण को इस कारण ठुकरा दिया क्योंकि मुझे अत्यधिक पैसे की कभी इच्छा ही न थी. बस आर्य समाज का प्रचार

प्रसार चाहता था और इसके लिए ही भजन लिखता और गाता था। यह उनके त्याग और समर्पण का एक बहुत बड़ा उदाहरण है। कोई अन्य होता तो इस निमंत्रण को तत्काल स्वीकार कर के चला जाता।

इस के साथ ही आपने मुझे एक बड़ी सुन्दर बात कही, जिसे प्रयोग में लाने से आर्य समाज को अच्छे उपदेशक मिल सकते हैं। उन्होंने कहा कि आज मैं देख रहा हूँ गुरुकुल से पढ़कर आर्य समाज में एक पुरोहित आते हैं। आर्य समाज में लगने के पश्चात् वह शास्त्री, एम.ए और बी.एड आदि पास कर लेते हैं। फिर आर्य समाज के प्रचार को छोड़ कर कोई और नोकरी ढूँढ़ लेते हैं। इससे आर्य समाज की बहुत हानि हो रही है। मैं चाहता हूँ कि आर्य समाज का कोई पुराहित लगने के पश्चात् एम.ए या बी.एड न करे। इस से आर्य समाज का हित होगा।

वैदिक सिद्धांतो पर भजन

आपने अपने भजनों कि रचना करते हुए वैदिक सिद्धांतो और आर्य समाज के नियमों और उपदेशों का पूरा पूरा ध्यान रखा और इन के आधार पर ही भजनों की रचना की गई। यह भजन आर्य समाज के प्रचार में मार्ग दर्शक सिद्ध हुए। उनके एक भजन की पंक्तियाँ देखते ही बनती हैं :–

नित्य स्वाध्याय सत्संग करते रहो।
इक दिन प्राप्त सद्ज्ञान हो जाएगा।

एक अन्य भजन, जिस में अलंकारों की छटा देखते ही बनती है, तथा एक निराकार प्रभु कि उपासना के लिए आदेश दिया है, इस प्रकार है :–

सुख चाहे यदि नर जीवन में भज ले प्रभु नाम प्रमाद न कर।
इक वही है सुमराने योग्य सखा और किसी को याद न कर ।।

अपनी त्याग भावना का भी आपने एक भजन में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है:–

न मैं धरा धाम धन चाहता हूँ।
तेरी कृपा का एक कण चाहता हूँ।

तीन बार लगातार **'ध'** की पुनरावृति कर इस भजन में कवि प्रकाश जी ने हिंदी के अलंकारों की अति मनोरम छटा बिखेर दी है और साथ ही किसी भी प्रलोभन से दूर रहने की इच्छा भी व्यक्त कर दी है।

पण्डित जी ने देशभक्ति के गीतों में भी कमाल ही कर दिखाया है। अमरसिंह राठोर, चितौड की प्रलयंकारी सतीत्व की कहानी, ह्गाल्दी घाटी का युद्ध और इस प्रकार के अनेक इतिहास की गाथाओं से भरे गीतों से भी अपनी कविताओं को संजोया है। आपने जन जन को आह्वान करते हुए लिखा है :–

यह मत कहो कि जग में कर सकता क्या अकेला।
लाखों में काम करता इक शूरमा अकेला।।

आपकी यह रचना इतनी प्रसिद्ध हुई कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के गीतों में इसे प्रमुख स्थान दिया गया।

भजनों की धुन

पण्डित जी के भजनों को गाने के लिए यह नहीं सोचना पड़ता था कि यह भजन किस धुन में गाया जावे और इस धुन को ढूढने के लिए उस धुन के फिल्मी गाने की खोज की जावे। यह भजन तो स्वयं ही गेय होते थे। उन्होंने कभी किसी फिल्मी धुन का आश्रय नहीं लिया और जो व्यक्ति इसे गाने बैठता है, वह स्वयं ही इस की एक धुन भी तैयार कर लेता है। इस धुन को तैयार करने की उसे आवश्यकता ही नहीं पड़ती, जिस रूप में भी वह इसे गाने लगता है, उस रूप में इनकी धुन स्वयं ही बनती चली जाती थी। वह शास्त्रीय संगीत के अच्छे जानकर थे।

स्वाधीनता आन्दोलन में

आर्य समाजी हो कर देश की स्वाधीनाता के लिये कुछ न करें यह तो कभी सम्भव ही नहीं हो सकता। आपने इस क्षेत्र में भी स्वयं को आगे बढाया। १६३० के राष्ट्रीय आन्दोलन में आपने बढ़–चढ़ कर भाग लिया और जेल भी गए। जहाँ आपको विषम यातनाएं दीं गईं किन्तु आप ने हंसते हंसते इन यातनाओं का सामना किया।

क्रांतिकारियों के रक्षक

आप में देशभक्ति की भावना इस परकर कूट–कूट कर भरी थी। क्रान्ति के मार्ग पर चलकर देश को स्वाधीन कराने की कल्पना करने वाले वीर क्रांतिकारी योद्धा समय समय पर आपका आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आपके पास आते थे और जब पुलिस उनके पीछे लगी होती थी तो आपके घर आ कर छुप जाते थे। आप का घर पहाड़ के बिलकुल साथ सटा हुआ था और जिस स्थान पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का अंतिम संस्कार किया गया था, उस स्थान से भी

बिलकुल पास में ही था (वास्तव में यह भवन उनकी बहिन का था, जिसकी मृत्यु के पश्चात् उसकी कोई संतान आदि न होने के कारण बहिन का यह घर उन्हें मिला था)। निवास के दरवाजे दो गलियों में खुलते थे, इस कारण विपत्ति के समय क्रांतिकारियों को दूसरे दरवाजे से निकल कर पहाड़ पर जाकर छुपने के लिए कह दिया जाता था। १९७५ में जब मैं उनके यहाँ रुका हुआ था तो उन्होंने मुझे बताया कि क्रांतिकारी यशपाल उनके निवास पर पुलिस से बचने के लिए छूपा हुआ था। इस मध्य ही उसके मेरे निवास पर होने की भनक लग पुलिस को लग गई तथा पुलिस का छापा मेरे निवास पर लगाद्य छान बीन हुई तो उन्हें कुछ भी नहीं मिला क्योंकि मैंने यशपाल जी को पहले ही पीछे के दरवाजे से निकाल कर तारा गढ़ (इस पहाड़ का नाम तारा गढ़ है, जो पृथ्वीराज चौहान कि पत्नि के नाम पर है) की और भगा दिया ताकि वह कुछ देर के लिए वहां जाकर छुप सके।

मुझे आशीर्वाद

पण्डित जी का मेरे साथ अत्यधिक लगाव थाद्य १९७५ में जब दिल्ली के रामलीला मैदान में सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने आर्य समाज का शताब्दी समारोह किया तो पण्डित जी परिवार सहित आर्य समाज बाजार सीताराम में रुके थे और मैं परिवार तथा प्राध्यापक राजेन्द्र जिग्यासु जी सहित आर्य समाज नया बांस के पास एक मंदिर में रुका था। मैं प्रतिदिन उन्हें आर्य समाज सीताराम जाकर लेकर सम्मलेन स्थल पर जाता था (वह स्वयं नहीं चल सकते थे क्योंकि गठिया रोग ने उनका शरीर जकड रखा था और अंगुलिया भी मुड चुकी थीं) तथा सायंकाल उन्हें वापिस भी लेकर आता था। जब सम्मलेन में राष्ट्रपति का सम्बोधन था तो उस अवसर पर आपने भी एक रचना रखी थी, इस रचना को रखने के लिए मैं ही आपको मंच पर लेकर गया था।

मेरे विवाह के समय आपने एक तो मेरे विवाह के लिए सेहरा लिखा था और एक काव्य रूप में उपदेशात्मक आशीर्वाद लिखा था, जिन्हें मैंने एक कैलेण्डर पर छपवाया था, इन दोनों को विवाह के अवसर पर गाने के लिए आपने अपने प्रिय शिष्य पंडित पन्नालाल पीयूष जी को महाराष्ट्र के नगर भण्डारा में भेजा था। आप समय समय पर विशेष रूप से उत्सवों के अवसर पर मुझे आशीर्वाद स्वरूप चार पंक्तियों कविता पोस्टकार्ड पर लिख कर भेजा करते थे। इसके पीछे एक छोटा सा पत्र भी लिखते थे। आपकी अंगुलियाँ गठिया के कारण मुड़ी हुईं थीं किन्तु तो भी अपने ही हाथों से पत्र लिखकर भेजा करते थे। इस परकर का स्नेह आपको मेरे साथ था।

दूरदृष्टि

आप की दृष्टि दूर की भावी घटनाओं को भी जानने की शक्ति रखतीं थीं। इस कारण लगभग २४ जून १९७५ रविवार को आप मुझे लेकर आर्य समाज केसर गंज अजमेर गए और फिर आर्य समाज परोपकारिणी सभा केसर गंज अजमेर गए। आप चल नहीं सकते थे, इस कारण मैं आप को पहिया कुर्सी पर लेकर गया था। आपने दोनों समाजों में मेरा व्यख्यान करवाया था। यहाँ से लौटते समय आप ने चर्चा करते हुए मार्ग में मुझे कहा कि चुनाव केस में इंदिरा गांधी हार तो गई है किन्तु यह बड़ी चालाक है। यह अपनी सत्ता को बचाने के लिए कोई न कोई मार्ग निकाल लेगी। हुआ भी वही अगले ही दिन देश भर में आपातकाल की घोषणा करके इंदिरा ने अपनी सता को बचा लिया चाहे इस के लिए पूरे देश को जेल बना दिया।

पण्डित जी ने लमबे समय तक आर्य समाज की सेवा की। इस मध्य आपने सारगर्भित तथा वेद और आर्य समाज के सिद्धांतों के अनुरूप काव्य रचना की। इसके साथ ही साथ भारतीय इतिहास की शूरता और वीरता की गाथाओं को भी काव्यबद्ध किया। इन रचनाओं के कारण आर्य समाज की भरपूर सेवा की। इस सेवा के लिए आपको अनेक बार अभिनन्दन व सम्मानित भी किया गया और आपके जीवन में आपका एक अभिनन्दन ग्रन्थ भी प्रकाशित किया गया गया। आप अपने जीवन के अंतिम लगभग डेढ़ दशक से भी अधिक समय पूर्व गठिया रोग से इस प्रकार ग्रसित थे कि अपने जीवन के लिए दूसरों पर आश्रित हो गए किन्तु तो भी आपने हांर नहीं मानी और अपने जीवन के प्रायः सब कार्य जहाँ तक सम्भव होते थे, स्वयं ही करते थे और मदमस्त भी रहते थे। आपने बताया कि एक बार मुझे बहुत कष्ट था, अस्पताल में भरती था। मुझे बहुत अधिक पीड़ा हो रही थी, इस कारण मैंने

डाक्टर को बुलवाया किन्तु जब तक डाक्टर आते तब तक मैंने स्वयं को अपने वश में कर लिया और दर्द भुलाकर गाने लगा। डाक्टर ने जब मुझे गाते हुए देखा तो वह बहुत हैरान हुआ।

आप में इतना आत्मबल था कि इतना रुग्ण और अशक्त होते हुए भी आपने अपने मस्तिष्क को अपने से दूर नहीं होने दिया और इसका प्रयोग करते हुए निरंतर काव्य रचना करते रहे और इसके साथ ही साथ आर्य समाज के प्रचार के लिए यात्राएं भी करते रहे। इस अवस्था में आप किस प्रकार हरमोनियम बजाते थे, यह सोच कर आज भी हैरान हुए बिना नहीं रह सकते।

रचनाएँ

आपकी काव्य कृतियों में प्रकाश भजनावली के पांच भाग, प्रकाश भजन सत्संग, प्रकाश गीत के चार भाग, प्रकाश तिरंगिनी के अंतर्गत साहित्यिक कवितायें, कहावत कवितावली, गो गीत प्रकाश, बाल हकीकत, विवाह सम्बन्धी काव्य पुस्तिका (जिसका नाम इस समय मुझे याद नहीं) तथा दयानन्द प्रकाश महाकाव्य उल्लेखनीय हैं। दयानन्द महाकाव्य का प्रथम भाग ही प्रकाशित हो पाया द्वितीय भाग आपने अपने मस्तिष्क में तो तैयार कर रखा था किन्तु उसे कागज पर नहीं उतार सके।

देहांत

दिल्ली आर्य प्रतिनिधि सभा ने एक पुस्तिका प्रकाशित की है, जिसका नाम "दिवंगत आर्य श्रेष्ठी है।" इस पुस्तक का सम्पादन डा. धर्मपाल जी ने किया है। इस पुस्तक में आर्य समाज के दिवंगत नेताओं, प्रचारकों, तथा उपदेशकों को स्मरण किया गया है। इस पुस्तक के पृष्ट ६०–६१ पर श्री पण्डित प्रकाश चंद कविरत्न शीर्षक के अंतर्गत एक लेख दिया है। यह लेख श्री मूलचंद जी गुप्त ने आर्य सन्देश में १७.१२ १९८९ के अंक में प्रकाशित हुआ था। इस लेख को वहीं से उठा कर इस पुस्तक में दिया गया है। इस लेख के अनुसार पण्डित प्रकाश चन्द कविरत्न जी का देहांत ११ दिसंबर १९७७ को हुआ। यह तिथि मुझे ठीक नहीं लगती। इसका प्रमाण यह है कि जुलाई १९८० से लेकर अप्रैल १९८१ तक मैं पंजाब विश्वविद्यालय में पुस्तकालय विज्ञान में स्नातकोत्तर कोर्स कर रहा था। इस मध्य पण्डित जी की धर्म पत्नी श्रीमती माया देवी का देहांत हुआ था और पण्डित जी ने इसकी सूचना स्वयं पत्र लिख कर मुझे दी थी। इसके पश्चात् भी वह अनेक वर्ष तक जीवित रहे और जब उनका स्वयं का देहांत हुआ तो इसकी सूचना उनकी सुपुत्री ने मुझे पत्र लिख कर दी थी। यह पत्र तो मेरे पास नहीं रहा किन्तु मैं यह कह सकता हूँ कि पण्डित जी मृत्यु की इस तिथि के बहुत समय बाद तक भी पण्डित जी जीवित रहे। सम्भव है यहाँ प्रूफ देखने वाले से कुछ गलती रह गई हो। हो सकता है यह सन् १९७७ न होकर १९८७ हो। अतः इस की खोज की आवश्यकता है।

आज पण्डित जी पार्थिव शरीर के रूप में तो हमारे मध्य नहीं है किन्तु उनके काव्य और भजन आज भी बडे जोश के साथ आर्य समाजों में गाये जाते हैं, जो हमें उनकी उपस्थिति का एहसास करवाते हैं।

यतो यतः समीहसे ततो नो अभयं कुरु।
शन्नः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः।।
यजुर्वेद।।३६। मं. १७,२२।।

(यतो यतः) हे परमेश्वर! आप जिस-जिस देश से जगत् के रचन और पालन के अर्थ चेष्टा करते हैं उस उस देश से भय से रहित करिये, अर्थात् किसी देश से हम को किञ्चित् भी भय न हो, (शन्नः कुरु) वैसे ही सब दिशाओं में जो आप की प्रजा और पशु हैं उन से भी हम को भयरहित करें तथा हम से उनको सुख हो, और उनको भी हम से भय न हो तथा आप की प्रजा में जो मनुष्य और पशु आदि हैं, उन सब से जो धर्म, अर्थ काम और मोक्ष पदार्थ हैं उन को आप के अनुग्रह से हम लोग शीघ्र प्राप्त हों, जिस से मनुष्यजन्म के धर्मादि जो फल हैं, वे सुख से सिद्ध हों।

स्वराज्य, स्वधर्म व स्वाभिमान हेतु बलिदानी महात्माः स्वामी श्रद्धानन्द

–✍ विनोद बंसल

एडवोकेट मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द तक जीवन यात्रा विश्व के प्रत्येक व्यक्ति के लिए बेहद प्रेरणादायी है। स्वामी श्रद्धानन्द उन बिरले महापुरुषों में से एक थे जिनका जन्म ऊंचे कुल में हुआ किन्तु बुरी लतों के कारण प्रारम्भिक जीवन बहुत ही निकृष्ट किस्म का था। स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई एक भेंट और पत्नी के पतिव्रत धर्म तथा निश्छल निष्कपट प्रेम व सेवा भाव ने उनके जीवन को क्या से क्या बना दिया। काशी विश्वनाथ मंदिर के कपाट सिर्फ रीवा की रानी के लिए खोलने और साधारण जनता के लिए बंद किए जाने व एक पादरी के व्यभिचार का दृश्य देख मुंशीराम का धर्म से विश्वास उठ गया और वह बुरी संगत में पड़ गए।

किन्तु, स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ बरेली में हुए सत्संग ने न सिर्फ उन्हें जीवन का अनमोल आनन्द दिया अपितु उन्होंने उसे सम्पूर्ण संसार को खुले मन से भी वितरित भी किया। समाज सुधारक के रूप में उनके जीवन का अवलोकन करें तो पाते हैं कि प्रबल विरोध के बावजूद, उन्होंने, स्त्री शिक्षा के लिए अग्रणी भूमिका निभाई। ईसाई मिशनरी विद्यालय में पढ़ने वाली स्वयं की बेटी अमृत कला को जब उन्होंने ***'ईसा–ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल। ईसा मेरा राम रमैया, ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया'*** गाते हुए सुना तो वे हतप्रभ रह गए। वैदिक संस्कारों की पुनर्स्थापना हेतु उन्होंने घर – घर जाकर चंदा इकट्ठा कर गुरुकुल कांगडी विश्वविद्यालय की स्थापना हरिद्वार में कर अपने बेटे हरीश्चंद्र और इंद्र को सबसे पहले भर्ती करवाया।

स्वामी जी मानते थे कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहां टीचर हैं, प्रोफेसर हैं, प्रिसिंपल हैं, उस्ताद हैं, मौलवी हैं पर आचार्य नहीं हैं। आचार्य अर्थात् आचारवान व्यक्ति की महती आवश्यकता है। चरित्रवान व्यक्तियों के अभाव में महान् से महान् व धनवान से धनवान राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं।

जात–पात व ऊंच–नीच के भेदभाव को मिटाकर समग्र समाज के कल्याण के लिए उन्होंने अनेक कार्य किए। अंग्रेजी में एक कहावत है कि ***चेरिटी बीगिन्स एट होम***। अर्थात् शुभकार्य का प्रारम्भ स्वयं से करें। प्रबल सामाजिक विरोधों के बावजूद अपनी बेटी अमृत कला, बेटे हरिश्चद्र व इंद्र का विवाह जात–पात के समस्त बंधनों को तोड़ कर कराया। उनका विचार था कि छुआछूतने इस देश में अनेक जटिलताओं ने जन्म दिया है तथा वैदिक वर्ण व्यवस्था के द्वारा ही इसका अंत कर अछूतोद्धार सम्भव है।

वे ***हिन्दी*** को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्र–लिपि के रूप में अपनाने के पक्षधर थे। सतधर्मप्रचारक नामक पत्र उन दिनों उर्दू में छपता था। एक दिन अचानक ग्राहकों के पास जब यह पत्र हिंदी में पहुंचा तो सभी दंग रह गए क्योंकि उन दिनों उर्दूका ही चलन था। त्याग व ***अटूट संकल्प के धनी*** स्वामी श्रद्धानन्द ने 1868 में यह घोषणा की कि जब तक गुरुकुल के लिए 30 हजार रुपए इकट्ठे नहीं हो जाते तबतक वह घर में पैर नहीं रखेंगे। इसके बाद उन्होंने भिक्षा की झोली डाल कर नसिर्फ घर–घर घूम 40 हजार रुपये इकट्ठे किए बल्कि वहीं डेरा डाल कर अपनापूरा पुस्तकालय, प्रिंटिंग प्रेस और जालंधर स्थित कोठी भी गुरुकुल पर न्योछावर कर दी।

उनका ***अटूट प्रेम व सेवा भाव*** भी अविस्मरणीय है। गुरुकुल मेंएक ब्रह्मचारी के रुग्ण होने पर जब उसने उल्टी की इच्छा जताई तब स्वामी जीद्वारा स्वयं की हथेली में उल्टियों को लेते देख सभी हत्प्रभ रह गए। ऐसी सेवा और सहानुभूति और कहां मिलेगी? स्वामी श्रद्धानन्द का विचार था कि अज्ञान, स्वार्थ व प्रलोभन के कारण धर्मांतरण कर बिछुड़े स्वजनों की शुद्धिकरना देश को मजबूत करने के लिए परम आवश्यक है। इसीलिए, स्वामी जी ने ***भारतीय हिंदू शुद्धि सभा*** की स्थापना कर दो लाख से अधिक मलकानों को शुद्ध किया। परावर्तन के अनेक कीर्तिमान बनाने के बावजूद एक बार शुद्धि सभा के प्रधान को उन्होंने पत्र लिख कर कहा कि 'अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण

कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं'। मुझे लगता है कि उनके शुद्धि आंदोलन के परिणाम स्वरूप ही आज दिल्ली भारत में हैं। अन्यथा, उस समय दिल्ली के आसपास बढ़ी मुस्लिम जनसंख्या के कारण विभाजन के बाद दिल्ली भी पाकिस्तान के हिस्से में चली जाती।

महर्षि दयानन्द ने राष्ट्र सेवा का मूलमंत्र लेकर आर्य समाज की स्थापना की। कहा कि 'हमें और आपको उचित है कि जिस देश के पदार्थों से अपना शरीर बना, अब भी पालन होता है, आगे होगा, उसकी उन्नति तन मन धन से सब जने मिलकरप्रीति से करें'। स्वामी श्रद्धानन्द ने इसी को अपने जीवन का मूलाधार बनाया।

वे एक निराले वीर थे। इसी कारण लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल ने कहा था 'स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही 1919 का दृश्य आंखों के आगे आ जाता है। सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोल कर आगे आते हैं और कहते हैं– 'लो, चलाओ गोलियां'। इस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं होगा? 'महात्मा गांधी के अनुसार' वह वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शैय्या पर नहीं, परन्तु रणांगण में मरना पसंद करते हैं। वह वीर के समान जीये तथा वीर के समान मरे'।

अफ्रीका में भारतीयों के अधिकारों के लिए रंग भेद के विरुद्ध सत्याग्रह कर रहे गांधी जी को आर्थिक सहयोग करने की अपनी इच्छा जब स्वामी जी ने अपने गुरुकुल के शिष्यों के समक्ष रखी तो उनमें से कुछ वरिष्ठ शिष्यों ने हरिद्वार के पास ही बन रहे दूधिया बांध में कुछ दिन मजदूर कर कमाए लगभग 2000 रुपए एकत्र कर गांधी जी को भेजे। इस सहयोग से अभिभूत गांधी जी ने भारत लौटने पर गुरुकुल काँगड़ी में स्वामी जी से भेंट की। गुरुकुल की शिक्षा पद्धति से प्रसन्न गांधी जी ने अपने बेटों को कुछ दिन गुरुकुल में ही रखा। स्वामी श्रद्धानंद ने हीएक मान पत्र के माध्यम से गांधी जी को ***'महात्मा'*** की उपाधि से पहली बार संबोधित किया था।

वे चाहते थे कि ***राष्ट्र धर्म*** को बढ़ाने के लिए,प्रत्येक नगर में एक 'हिंदू–राष्ट्र मंदिर' होना चाहिए जिसमें 25 हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकें। वहां वेद, उपनिषद, गीता, रामायण, महाभारत आदि का पाठ हुआ करे। मंदिरों में अखाड़े भी हों जहां, व्यायाम के द्वारा शारीरिक शक्ति भी बढ़ाई जाए। प्रत्येक हिन्दू राष्ट्र मंदिर पर गायत्री मंत्र भी अंकित हो। देश की अनेक समस्याओं तथा हिंदू उद्धार हेतु उनकी एक पुस्तक 'हिंदू सॉलिडेरिटी–सेवियरओफडाइंगरेस' अर्थात् 'हिंदू संगठन – मरणोन्मुख जाति का रक्षक' तथा उनकी आत्मकथा 'कल्याण मार्ग के पथिक' आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रही हैं। संस्कारी शिक्षा, नारी स्वाभिमान, शुद्धि आंदोलन, राजनीतिक व समाजिक सुधार, स्वराज्य आंदोलन, अछूतोद्धार, वेद उपनिषद व याज्ञिक कार्यों का विस्तार इत्यादि के क्षेत्र में उनका योगदान सदियों तक विश्व कल्याण का मार्ग प्रसस्त करेगा।

राजनीतिज्ञों के बारे में स्वामी जी का मत था कि भारत को सेवकों की आवश्यकता है लीडरों की नहीं। शुद्धि आंदोलन से विचलित एक धर्मांध अब्दुल रशीद नामक इस्लामिक जिहादी ने 23 दिसम्बर 1926 को चाँदनी चौक दिल्ली के दीवान हॉल स्थित कार्यालय में रुग्ण शैया पर लेटे स्वामी जी को धोखे से गोलियों से लहू–लुहान कर चिरनिद्रा में सुला दिया। वे आज स–शरीर भले हमारे बीच ना हों किन्तु, उनका व्यक्तित्व, कृतित्व व शिक्षाएं मानव–जाति का सदैव कल्याण करती रहेंगीं। भगवान् श्री राम का कार्य इसीलिए सफल हुआ क्योंकि उन्हें हनुमान् जैसा सेवक मिला। स्वामी श्रद्धानन्द भी सच्चे अर्थों में स्वामी दयानन्द के हनुमान् थे जो निस्वार्थ भाव से राष्ट्र–धर्म की सेवा के लिए तिल–तिल कर जले। ******

जातो जायते सुदिनत्वे अह्नां समर्य आ विदथे वर्द्धमानः।
पुनन्ति धीरो अपसो मनीषा देवया विप्र उदियर्ति वाचम् ।।

– ऐतरेय ब्राह्मण ६–२

भावार्थ – ऐ शरीरधारी जीव ! तू जीवन के संग्राम में अपने कुदिनों को सुदिन बना । इस संसार युद्धक्षेत्र में अन्दर–बाहर के शत्रुओं से युद्ध करता हुआ आगे बढ़। जैसे विद्वान् लोग (मनीषा–अपसः) अपनी बुद्धि से शुभकर्मों को ही करते हैं, वैसे तू भी धर्माधर्म आदि का विचार करके कर और वेदों के विद्वानों के समान सुमधुर – हितकारी वाणी ही सदा बोल, जिससे जीवन सर्वप्रिय – महान् बने ।।

कुरान में वेदांश

–✍ पंडित चमूपति एम.ए.

ईश्वर –

ईश्वर–वादी धर्मों का प्राण परमेश्वर का विचार है। इसी में उनकी दार्शनिक दृष्टि तथा आध्यात्मिक अनुभव की पराकाष्ठा होती है। "अनादित्रयी' विषयक व्याख्यान में हम ईश्वर की सत्ता की दार्शनिक आवश्यकता पर विचार कर चुके हैं। ईश्वर के अतिरिक्त जीव तथा प्रकृ ति के अनादित्व पर दार्शनिक विचार कर, इस त्रैतवाद की पुष्टि में वेद तथा कुरान दोनों के वाक्य भी उसी स्थल पर उपस्थित किये गये थे। आज के व्याख्यान में हमें ईश्वर के स्वरूप पर विचार करना है। इसके लिए हमें वेद और कुरान दोनों के ईश्वर की स्तुति से परिपूर्ण आलापों में से प्रभु के उन विशेषणों का संग्रह करना होगा जिनसे प्रभु का प्यारा, भक्ति–भाव में भीज–भीज कर, प्रभु की अपार महिमा का गान करता है। प्रभु की महिमा गाते न वेद अघाता है न कुरान! विषय कुछ हो,ईश्वर की स्तुति की टेक प्रत्येक गान, प्रत्येक तान में ओत–प्रोत है। अनजान लोग इस पर अप्रसंग की आपत्ति उठाते हैं, वे यह नहीं जानते कि सच्चे आस्तिक के प्राण–प्राण में प्रभु की प्रीति रमी रहती है। वह बाह्य साधनों से कोई कार्य करता रहे, उसका हृदय ईश्वर ही में विलीन रहता है। इसीलिये तो ऋषि दयानन्द कहते हैं –

"परन्तु नैवेश्वरस्यैकस्मिन्नपि मन्त्रार्थे अत्यन्तं त्यागो भवति।
कुतः ? निमित्तकारणस्येश्वरस्यास्मिन् कार्ये जगति सर्वाङ्गव्याप्तिमत्वात्।"

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका पृ० ३६३

एक भी मन्त्र के अर्थ में ईश्वर का सर्वथा त्याग नहीं किया जा सकता। कारण कि निमित्तकारण परमेश्वर इस कार्य जगत् के अंग–अंग में व्यापक है।

वेद तथा कुरान दोनों की प्रधान लय ईश्वर–स्तुति है। ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के दूसरे नियम में ईश्वर के कुछ गुणों का संग्रह किया है। ईश्वर के सामान्य ध्यान के लिये यह संग्रह एक अनूठी वस्तु है। अत्यन्त संक्षेप में प्रभु की महिमा का एक सुन्दर समूचा परिचय दे दिया है। इन गुणों को लक्ष्य में रखकर हम वेद और कुरान की समानार्थक उक्तियाँ उद्धृत करेंगे। इससे हमें यह विचार करने का अवसर मिल जायेगा कि प्रभु के स्वरूप का जो चित्र ऋषि ने खींचा है वह वेद पर आश्रित तो है ही। क्या कुरान के अनुयायी भी उसी चित्र को अपनी अभिमत पुस्तक के आधार पर अपने हृदय मन्दिर में पूर्ण श्रद्धा, पूर्ण आस्था के साथ प्रतिष्ठित कर सकते हैं या नहीं?

आर्यसमाज का दूसरा नियम यह है –

परमेश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तरयामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

इस नियम में सबसे पूर्व परमात्मा का स्वरूप या दार्शनिक भाषा में स्वरूप लक्षण बतलाया गया है। स्वयं सत् द्रव्य तीन हैं यह इसी स्वरूप–लक्षण से ही स्पष्ट है। यदि एक ईश्वर ही स्वतः सत् होता तो उसे केवल सत् कहना पर्याप्त था। अपने अनादि–त्रयी शीर्षक व्याख्यान में मैंने आपका ध्यान इस ओर भी खेंचा था कि जब किसी पदार्थ को सत् ही कह दिया गया तो वह इसी से अव्यपदेश्य तो रहा नहीं। फिर यहाँ तो सत् भी कहा है और चित् और आनन्द भी। कारण कि सत् तो प्रकृति भी है और आत्मा भी। चित् कहने से ईश्वर और जीव की प्रकृति से व्यावृत्ति होती है और आनन्द कहने से जीव से ईश्वर की व्यावृत्ति हो जाती है। इस प्रकार सच्चिदानन्द परमात्मा का सारगर्भित लक्षण है। इस लक्षण में जहाँ यह स्पष्ट हो गया कि ईश्वर में जीव और प्रकृति दोनों के गुण विद्यमान हैं। वहाँ यह भी बता दिया गया है कि ईश्वर की विशेषता विभिन्नता इन दोनो पदार्थों से क्या है। वेद में इस अभिप्राय को ***भूभुवः स्वः (यजु०)*** कहकर प्रकट किया गया है। भूः का अर्थ है सत् । भुवः का अर्थ है चित् । और स्वः का अर्थ है आनन्द ईश्वर का विशेष व्यावर्तक गुण आनन्द

है। इस तथ्य को वेद इन शब्दों में कहता है –

स्वर्यस्य च केवलम् ।

कुरान में इस प्रकार का स्रोत जिससे प्रकृति और जीव के गुणों का प्रभु में समावेश भी हो जाय और इनसे भेद भी दर्शा दिया जाय कहीं अलग नहीं मिलता तो भी प्रभु की महिमा के विविध स्रोतों से जो कुरान के पृष्ठों में सर्वत्र फैले हुए हैं। यह बात स्पष्ट निकलती है कि ईश्वर का यह स्वरूप कुरानकार को अभिमत है। ईश्वर को "औवल'' और "आखिर''– पूर्व और शेष– कहकर उसकी नित्यता द्योतित की है। यह हुआ सत् । (सू० हदीद रु० १) फिर ईश्वर को सर्वज्ञ तो स्थान स्थान पर कहा है –

अल्लाह आसमानों और जमीन में है। वह जानता है तुम्हारा गुप्त और तुम्हारा प्रकट और जानता है जो तुम कमाते हो। (सू० अनाम रु० १)

क्या तू नहीं देखता कि ईश्वर जानता है जो आसमानों में और जो है पृथ्वी पर। तीन पुरुष वहीं मन्त्रणा कराते जब न हो वह चौथा और न पांच जब न हो वह छआ। (सू० मजादलत रु० १)

कुरान के इन वाक्यों को सुनते हुए आपको स्वभावतः अथर्ववेद का यह मन्त्र स्मरण हो जावेगा।

यस्तिष्टति चरति यश्च वञ्चति यो निलायं चरति यः प्रतङ्कम्।
द्वौसन्निषध यन्मत्रयेते राजा सद्वेद वरुण सस्तृतीया
अथर्व० ४/१६/२

जो कोई ठहरता है, वो चलता है, ठगता है, छिपकर क्रिया करता है, किसी का अहित करता है दो मिलकर जो मन्त्रणा करते हैं। उसे वरुण तीसरा होकर जानता है। जमीन और आसमान की बात भी वेद ने मजे ले लेकर कही है –

उतेयं भूमिवरुणस्य राज्ञः उतासौ द्यौबृहती दूरे अन्ता।
उतो समुद्रौ वरुणस्य कुक्षी उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।।

यह पृथ्वी और वह द्यौलोक– इतने दूर–दूर पड़े हुए उसी राजा वरुण के ने दी हैं। दोनों समुद्र ऊपर के वास्य और नीचे के जल उसकी कोख हैं। और वह पानी की बूंद–बूंद में समा रहा है।

इसमें ईश्वर कवियों की भाषा में "अणोरणीयाम् महतो महीयान्' कहा गया है। कुरान में यह बात उसे "वसी'' और "लतीफ'' (सू० अनाम रु० १३) बतला कर कही गई है। सुनिये क्या सुन्दर वर्णन है। आपको उपनिषद् याद आएगी–

आँखें उसे नहीं देखतीं परन्तु वह आँखों को देखता है। वह सूक्ष्म है, सब जाननेवाला । अनाम रु० १३

नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वर्मषत्। यजु० ४०

उस पहिले से आगे निकल गये को इन्द्रियाँ नहीं जानतीं ।

और उसने गिन लिया है सब चीजों की संख्या को। (सू० मुजम्मिल रु २०)

अथर्व में भी आया है –

संख्याता अस्य निमिषो जनानाम् ।

जीवों के निमेष तक उसके गिने हुए हैं। ***अ० ४/१६/५***

रहा आनन्द। उसका रस तो स्वर्ग के भोगों में अलंकार–रूप से वर्णित है। अल्लाह सरूर का प्रथम स्रोत है। यह बहिश्तियों को अपने हाथों ? "शराबे तहूर' देगा अर्थात् पवित्र मय। यह वेद का सोम है– अर्थात् भक्ति की मस्ती।

निराकार –

आकार मध्यम परिमाण की वस्तु का होता है। अणु और विभु का नहीं। वेद ने परमेश्वर को "अकाय'' कहा है। यजुर्वेद में आया है

विभूरसि प्रवाहणः ।

तू विभु है और विश्व को गति देता है।

कुरान में भी यह तो कहा ही है –

उसकी कुर्सी ने जमीन और आसमान को छा लिया है।

सू० बकर० रु० ३४

परन्तु इस कुर्सी का लाक्षणिक अर्थ ईश्वर की शक्ति या ज्ञान अथवा दया किया जाता है। अर्थात् समझा यह जाता है कि ईश्वर हर जगह स्वयं तो है नहीं किन्तु अपनी अनन्त शक्ति द्वारा सर्वत्र राज्य करता है।

कुरान में ईश्वर की व्यापकता का वर्णन साधारण तथा उसके ज्ञान तथा कृपा दृष्टि से या इनके गुणों के साथ ही किया गया है, यथा –

वह व्यापक है सब वस्तुओं पर ज्ञान द्वारा।

सू० अनाम रु० १

हमारे पालक। तू ने छा लिया है आसमानों और पृथ्वी को। दया और ज्ञान द्वारा। ***सू० मोमिन रु० १***

कहने को तो यह भी कह दिया है कि –

वह तुम्हारे साथ है जहाँ कहीं तुम हो ।

सू० हदीद० रु० १

परन्तु उसी जगह यह भी लिखा है –

अल्लाह तुम्हारे सारे काम देखता है।

एक और स्थान पर आया है –

परमेश्वर निकट है शहरग से ।

–सूए० काफ रु. १

अधिक कठिनता वहाँ होती है जहाँ कयामत के दिन में सुकर्मियों को अल्लाह की दाईं ओर और कुकर्मियों को बाईं ओर बिठाया है। इन स्थलों का लाक्षणिक अर्थ कर ईश्वर को स्वरूप से ही सत्ता की दृष्टि से ही विभु समझने में कठिनता होनी चाहिये। विभु के ज्ञान तथा शक्ति को सर्वव्यापक मानना सरल है। अल्प परिमाण का पदार्थ सब दृष्टियों से परिमित रहता है। मध्यम की शक्ति विभु इसका कोई दृष्टान्त नहीं।

सर्वशक्तिमान –

ईश्वर की ही शक्ति सब चीजों पर है।

– सू० आल अग्रमण रु० १५१

पहिले तो मुसलमान सर्वशक्तिमान् का अर्थ किया करते थे 'कुछ भी कर सकने वाला' परन्तु ऋषि दयानन्द के प्रचार से उनमें से कुछ लोग समझ गए हैं कि इसप्रकार की सर्वशक्तिमत्ता प्रभु का भूषण ही नहीं उलटा दूषण भी हो सकती है। पहिले तो अनादि और स्वतः सत् पदार्थ केवल ईश्वर ही को मानते थे। मैंने शिबली के प्रमाण से प्रदर्शित किया था कि यह मन्तव्य कतिपय मुसलमानों ने यूनानी दार्शनिकों की देखा देखी ही ग्रहण कर लिया था। कुरान की शिक्षा से इस मन्तव्य का कुछ सम्बन्ध न था । परन्तु अब ज्यों ज्यों उस विचार की अतार्किकता समझ में आती जाती है। सर्वशक्तिमत्ता का वही अर्थ अङ्गीकार किया जा रहा है जो ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश में किया है। ऋषि लिखते हैं –

क्या दुसरा खुदा भी बन सकता है, अपने आप मर सकता है? मूर्ख रोगी और अज्ञानी बन सकता है? ..... परमेश्वर अपने और दूसरों के गुण कर्म स्वभाव के विरुद्ध कुछ भी काम नहीं कर सकता ।

– सत्यार्थप्रकाश समुल्लास १४ पृ० ५६०

मुसलमान विचारकों की समझ में भी यह बात आ गई है। पिछले दिनों एक कादियानी महाशय, मौलवी मुहम्मद इसहाक साहिब ने एक पुस्तक लिखा जिसमें उन्होंने माना – हम मुसलमान ..... उसकी अपरिमित सत्ता की तरह उसके हर एक गुण को अपरिमित मानते हैं। परन्तु एक नियम के अधीन और वह यह कि उसका कोई गुण किसी अन्य गुण को काटता नहीं।

सर्वशक्तिमान् सत्ता को किसी नियम के अधीन लाना ऋषि का पक्ष स्वीकार करना ही तो है। यदि ईश्वर न्यायकारी है, इसके प्रमाण मैं अपने पुनर्जन्म सम्बन्धी व्याख्यान में दे चुका हूँ। इससे अधिक न्याय क्या हो सकता है? कहा है –

और पूर्ण दिया जायगा जीव को जो उसने किया है।

– सू० महल आयत १०६

अन्यत्र कहा है –

वह स्थित है साथ न्याय के। ***आल अमरान रु० ३०***

इसके विरुद्ध यह आया है कि –

जो भलाई हो उसे दुगना कर देता है। सू० नसा० आ.३१

यह तो हुई भलाई की बात । बुराई की भी यही अवस्था है, यथा –

दूना किया जायगा उनके लिये दुःख कयामत के दिन,
और वे सदा रहेंगे उसमें दुःख उठाते ।

सू० फुकीन० रु० ६

यह द्विगुण की बात मेरी समझ में कभी नहीं आई। भलाई और उसका फल एक ही द्रव्य की दो राशियाँ तो हैं नहीं कि एक दूसरे की दुगनी हो जाय। कुछ भलाई का फल कुछ सुख नियम कर दिया। फिर सबको उनके किये के अनुपात में सुख देते चले। इसमें न्यूनाधिक तो करना नहीं। भलाई का पैमाना निश्चित, फल की मात्रा निश्चित । अब इस फल को कर्म का दूना कह लो, चाहे चौगुना। कहने की ही बात है। वस्तुतः वे है बराबर। जैसे एक रुपये के बदले में जितनी खांड मिलती है, वह उसके बराबर है। मेरे विचार में यह दूने– और कहीं कहीं उससे अधिक फल का भी वचन दिया है की उक्ति केवल अर्थवाद है। उससे अन्याययुक्त दया अभिप्रेत नहीं । खेद है तो यह कि प्रचलित इसलाम इसी अर्थवाद को मुख्य सिद्धान्त मानता है।

दयालु –

ईश्वर को दयालु तो मुसलमान दिन में कई बार कहते हैं।

"अर्रहमान अर्रहीम"।

' रहमान' का अर्थ है बिना कर्म के सामान्य दया करने वाला। जैसे जगत् की सृष्टि कर उसमें वायु इत्यादि पदार्थ सर्व साधारण के लिये खुले दे देने से। और रहीम ! का अर्थ कर्मों का दयापूर्वक देनेवाला।

इस पर ऋषि दयानन्द का निम्न लेख देखने योग्य है–

देखो ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों को प्रयोजन सिद्ध देने के अर्थ जगत् में सकल पदार्थ उत्पन्न करके दान दे रखे हैं। इससे भिन्न दूसरी बड़ी दया कौन सी है। अब न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख दुःख की व्यवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। इन दोनों को इतना भेद है कि जो मन में सब सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा किया करता है वह दया और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाती है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सबको पाप और दुखों से पृथक् कर देना। सत्यार्थप्रकाश समुल्लास ७ पृ० १६१

इन शब्दों में ऋषि ने दया और न्याय को खूब समन्वित किया है। इसी भाव को आधुनिक मुसलमानों ने रहीम और रहमान के अर्थों में लगा दिया है।

वेद में ईश्वर को मित्र कहा तो कुरान में भी–

वह तुम्हारा मालिमया मित्र है– बहुत अच्छा सहायक।

सू०हज रु० १०

वेद का ईश्वर मित्र और अर्यमा साथ–साथ है तो कुरान को अल्लाह भी रहमान और रहीम एक साथ है। कैसा अच्छा मेल है ! कहते हैं –

अल्लाह मुहब्बत करता है उसे जिसे चाहता है और राह दिखाता है उसे जो उसकी ओर आता है।

सूरा शूरा रु० २

यमेष वृणुते तेन लभ्यः का अनुवाद मात्र ही तो है।

अजन्मा –

जिसका शरीर नहीं उसे जन्म क्या लेना। वह तो अपनी महिमा द्वारा सब ओर' जात '– प्रकट हो रहा है। वेद कहता है –

अजायमानो बहुधा विजायते । यजु०

जन्म न लेकर विविध प्रकार से प्रकट हो रहा है।

कुरान में ईसाइयों के इस मन्तव्य का कि ईसा ईश्वर का औरस है स्थल–स्थल पर खण्डन किया है। प्रकरण वश यह भी कह गये हैं कि प्रभु का जन्म नहीं होता।

वह प्रजनन नहीं करता न प्रजनन किया जाता है।

सू० ११२ आ० १

अनन्त –

अन्त एक तो देश का है सो तो विभु कहने मात्र से निराकृत है। ऋग्वेद में आता है – ***न यस्य द्यावापृथिवी अनुव्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशु। ऋ० १.४.१४.१४***

जिस सर्वव्यापक की महिमा का अन्त न आकाश ने पृथिवी न समुद्र पा सकते। अर्थात् सूक्ष्म, स्थूल तथा मध्यम परिमाण का कोई तत्व नहीं पा सकता। अथर्व में आया है–

अनन्तं विततं पुरुत्रानन्त वच्चा समन्ते ।।

अथर्व १०/८/१२

उस अनन्त विभु का सान्त और अनन्त आश्रय लेते हैं। इस विषय में कुरान की स्थिति पर मैं निराकार के प्रकरण में प्रकाश डाल चुका हूँ। परमात्मा की विभुता स्वीकार तो की है परन्तु उसकी अनन्त शक्तियों द्वारा ही। वेद में सर्वतो मुखः। यजु० कहा है तो कुरान में भी आया है–

परमेश्वर के हैं पूर्व और पश्चिम। जिधर तुम मुख करो, उधर ही परमेश्वर को मुख है। निश्चय अल्लाह विभु है ज्ञानी । ***सू० बक्र ३० १३***

निर्विकार –

परमेश्वर ही सारे संसार में विकार आने का कारण है, परन्तु स्वयं विकृत नहीं होता। इसी को कूटस्थ ब्रह्म कहते हैं । वेद कहता है––

तदेजति तन्नैजति । यजुः ४०

वह हिलाता है दिखता नहीं। परमेश्वर का नाम है "अदिति'' अखण्ड। अन्य विकार तो क्या, परमेश्वर के नियम ही नहीं बदलते।

नकिष्ट एता व्रता मिनन्ति। ऋ० १/६६/५

परमात्मा के नियम नहीं बदलते ।

कुरान ने जैसा इसका अनुवाद कर दिया हो। कहा है – परमेश्वर की यही पुरानी रीति है। परमेश्वर की नीति में तुम कोई परिवर्तन नहीं पायगा।

– सू० फतह अ० २३

अनादि –

अथर्व में आया है

सनातनमेनंमाहुरुताद्यः स्यात् पुनर्णवः ।
अहोरात्रे प्रजायते अन्यो अन्यस्य रूपयोः।

– अथर्व० १०/८/२३

वह पुरातन है। प्रथम। सदा नया। सृष्टि और प्रलय एक दूसरे के पीछे रूप–परिवर्तनमात्र से घटित हो रहे हैं।

कुरान में भी तो लिखा है–

वह पूर्व–प्रथम है। वह शेष–अन्तिम है।

— सू० हरीद० रु० १

अनुपम —

प्रभु की उपमा हो नहीं सकती। उस जैसा और कौन है । वेद ने कहा — न तस्य प्रतिमा अस्ति । यजुः तो कुरान ने झट अनुवाद किया — उस जैसा कोई नहीं।

सर्वाधार —

स्कम्भनेमे विष्टभिते द्यौश्च भूमिश्च तिष्ठतः।
स्कम्भ इदं सर्वमात्मन्वद् यत्प्राणन्निमिषच्चयत् ।।

अथर्व १०/८/२

आश्रय रूप परमेश्वर द्वारा व्यस्थित द्यौः और पृथिवी खड़े हुए हैं। उसी आश्रय रूप परमेश्वर द्वारा सजीव प्राणी जो सांस लेते और आँख झपकाते हैं।

कुरान —

उसका सिंहासन है आसमानों पर और पृथिवी पर और वह थकता नहीं इन्हें थामने से।

सू० बक्र रु० ३४ आ० २५८

सर्वेश्वर —

ऋषिर्हि पूर्व जा अस्येक ईशन ओजसा।

ऋ० ५/८/१६/४१

हे प्रभो आप सर्वद्रष्टा, अनादि, अपनी शक्ति के कारण एक मात्र ईश्वर हैं। उसी का है जो आसमानों में है और जो पृथिवी पर है। सू० बक्र रु० आ० २५८

सर्वव्यापक —

ता आपः स प्रजापतिः। यजु० ३२/१

वह सर्वव्यापक है वह प्रजा का स्वामी है।

सर्वान्तर्यामी —

वेद ईश्वर को अन्तरिक्ष कहता है। अर्थात् सबके अन्दर बसने वाला। यजुर्वेद में कहा है —

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य वाह्यतः ।

वह इस सबके अन्दर है, वह इस सबके बाहर है।

कुरान कहता है —

अल्लाह रहता है मनुष्य और उसके हृदय के बीच में।

सू० अनफाल ६० ३ ० २४

अन्तयमिता का क्या सुन्दर वर्णन है।

अजर अमर —

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनो नः।
तमेव विद्वान् न विभाय मृत्योरात्मान धीरमजरं युवानम्।

अथर्व १०।८।४४

कुरान में आया है—

सब चीज म्रियमान है। सिवाय इसके मुख के।

सू० किसस रु० ८

अभय —

वेद तो परमेश्वर को अभयङ्कर कहता है यथा—

वृषेन्द्रपुरएतुनःसोमयाअभयङ्कर। अथर्व १/२१/१

नित्य —

शश्वताम ! साधारणः । ऋ०

अल्लाह एक है, नित्य है। सू० बहरत, १

पवित्र —

शुद्धमपापविद्धम! । यजु० ४

वह शुद्ध है, पाप के लेश से भी मुक्त है।

कुरान ने कहा है —

अल्लाह के सिवाय पूज्य नहीं। उसी के हैं (सभी शुभ नाम) ***सू० ताहां० स० १***

नाम गुणों ही का तो द्योतक होता है। नाम शुभ होने का अर्थ ही यह है कि उसे के गुण शुभ हैं।

सृष्टिकर्ता –

ईश्वर के स्रष्टत्व पर यहाँ अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। अनादि त्रयी प्रकरण में वेद तथा कुरान से केवल यही सिद्ध न किया गया था कि ईश्वर संसार को बनाता है किन्तु यह सिद्धान्त भी दोनों पवित्र पुस्तकों के आधार पर स्थापित किया था कि सृष्टि सदा असत् से नहीं, सत् स्वरूप प्रकृति से ही की जाती है।

उपास्य —

इसी एक ईश्वर की उपासना करनी चाहिये। ईश्वर का उपासक एक अटूट आश्रय रखता है। अतः उसे भय किसी को नहीं रहता। वह किसी के आगे नहीं झुकता है। किसी की चरण–शरण में जाने से अपने आप को धन्य मानता है अतः उद्दण्ड भी नहीं होता। विनीत रहता है। वेद का आदेश स्पष्ट है।

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एवं नमस्यो विक्ष्वीडयः।
तं त्वा योमि ब्राह्मण दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिविते सधस्यम्।। अथर्व० २.२.१.

हे प्रभो! आप ज्योति है! ज्ञान के आधार, संसार के स्वामी, अकेले उपास्य, प्रजाओं की स्तुतियों के पात्र । उन आपसे मैं वेदवाणी द्वारा संयुक्त होता हूँ।

हे प्रकाशस्वरूप देवादिदेव! आपको नमस्कार हो। आपका स्थान प्रकाश में है।

कुरान में आया है – ***वह तुम्हारा ईश्वर है। उसके सिवा पूज्य नहीं । सब पदार्थों का स्रष्टा । पूजा उसी की करो। वह सर्व द्रष्टा है।*** ***सू० अनाम आ० १०२***

ऋषि ने उपासना का अर्थ किया है–उपास्य के रंग में रंग जाना। हम गायत्री मन्त्र का ही जाप करते हुए रोज कहते हैं – ***भर्गो देवस्य धीमहि।***

हम उस देवता के तेज का धारण करते हैं। उसके रंग में रंग जाते हैं। कुरान में आया है –

अल्लाह का रंग। कौन रंग अच्छा है अल्लाह के रंग से। हम उसी को पूजते हैं। सू० बकर सू० १६,

उद्धरण तो दोनों पुस्तकों से यथेच्छ दिये जा सकते हैं। परन्तु बानगी के रूप में इतने पर्याप्त हैं। परमेश्वर के संबंध में भी प्रचलित इस्लाम कुरान से उतना ही दूर जा पड़ा है जितना अपने और धार्मिक मन्तव्यों में । प्रचलित इस्लाम ईश्वर को सृष्टिकर्ता तो मानता है परन्तु असत् से । दैववाद इस मन्तव्य का स्वाभाविक परिणाम है। जब हम पहले थे ही नहीं तो हमारे भले बुरे भाग्य का प्रथमा विधाता भी बिना किसी आधार के–ईश्वर ही ठहरेगा। ईश्वर ने जैसा बना दिया। वैसे हम बन गये। हमारे कर्म को हमारे भाग्य में दखल क्या और जो एक बार बिना बीज बोये फसल काट ली तो आगे एकाएक बीजारोपण का नियम प्रवृत्त हो जाना किसी तरंगी शासक की तरंग भले ही हो, न्यायकारी, नियन्ता का निश्चित नियम नहीं हो सकता। किसी नियम का भी एकाएक चल पड़ना मौलिकआधारभूत–स्वछन्दता, अनियम है। जिस प्रवृत्ति का मूल ही अनियम–आकस्मिकता–परा हो, उसका फिर आगे भी भरोसा क्या? प्रचलित इस्लाम को आत्म–संगति का श्रेय अवश्य देना चाहिये। जिस प्रवृत्ति का आरम्भ परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छा से किया है, उसका अन्त भी अल्लाह की स्वच्छन्द इच्छा द्वारा निर्धारित अनिवार्य ही में करते हैं। संसार का अन्त बहिशत और दोजख में है। इन दोनों के लिये लोग पूर्व से निश्चत हैं। जिसे दोजख में जाना है, वह लाख यत्न करने पर भी कि बहिश्त में जाए, दोजख ही में जायगा। बुराइयों को सहसा भलाइयों को और भलाइयों को सहसा बुराइयों का रूप दे दिया जा सकता है। इसमें संदेह नहीं कि स्वयं कुरान में इस अभिप्राय के वाक्य मिल जाते हैं। परन्तु मैंने इनके विरुद्ध आशय रखने वाली आयतों ही की आपके सम्मुख उद्धरण किया है। मैं चाहता हूँ कि कुरान के अनुवादक मुख्तया इन आयतों को दें । इनके विपरीत आदेशों की संगति उन्हें गौन वृत्ति से अर्थवाद बताकर कर लें। वस्तुतः देववाद एक बला है जो मनुष्यों की कर्म–शक्ति का संहार कर देती है। यह एक सील है जो चुपके चुपके व्यक्तियों तथा जातियों के भाग्य भवन को अन्दर ही अन्दर से खोखला कर छोड़ता है। आधुनिक इस्लामी देशों की अनुन्नति–शीलता विज्ञान दर्शन, शासन प्रत्येक क्षेत्र में पीछे ही पीछे रह जाने की प्रवृत्ति धर्म में कट्टरपने ज्ञान में अंधविश्वास तर्क में असहिष्णुता का राज्य है। इन दुर्गुणों का इन देशों के प्रधान केन्द्र बने रहने देने का उत्तरदायित्व इसी भाग्यवाद पर है।

मौलाना शिब्ली का इस्लाम –

मैंने अपने प्रथम व्याख्यान में उन परिवर्तनों के प्रमाण दिये थे जो इस्लाम के वर्तमान नेताओं की धर्म–दृष्टि में धीरे–धीरे प्रवेश पा रहे हैं। पर सैय्यद अहमद और गुलाम अहमद कादियानी ऋषि दयानन्द के समकालीन थे। उनका ऋषि दयानन्द से संसर्ग भी रहा था। सर सैय्यद ऋषि के भक्तों में से थे। मिर्जा ने ऋषि के जीवन–काल में तो उनका नाम भी अपने लेखों अथवा व्याख्यानों में नहीं किया। परन्तु उनके देहान्त के उपरांत लिख दिया कि मेरी अमुक घोषणा का सम्बोधन ऋषि दयानन्द की ओर था। इससे मानसिक संसर्ग स्पष्ट है। मौलाना शिब्ली इन दोनों से अधिक विद्वान हुए हैं। उन्होंने अपने पुस्तक 'अलकलाम' में प्रचलित इस्लाम का कायाकल्प करना चाहा है। इनकी एक और पुस्तक 'इलमकलाम' में स्पष्ट पृथक् मार्ग निकाला है। विद्वत्ता की शैली से 'इलकलाम' से एक आध उद्धरण मैं अपने अनादित्रयी शीर्षक व्याख्यान में उपस्थित कर चुका हूँ। स्पष्ट पृथक् मार्ग निकाला है। विद्वत्ता की शैली से 'ईलाकलाम' से निम्नलिखित सन्दर्भ मौलाना की धर्म–दृष्टि के एक संक्षिप्त चित्र का परिचय देंगे।

(विशेष टिप्पणीः– पं० श्री चमूपतिजी ने अपनी मौलिक दार्शनिक पुस्तक चौदहवीं का चाँद में तकदीर की इस मान्यता पर एक पूरा अध्याय लिखा है । वह बड़ा रोचक व पठनीय है । आपने अपनी अंग्रेजी पुस्तक Ten commandments of Swami Dayananda में भी प्रसंगवश इस मान्यता का विवेचन किया है।

ईश्वर के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये आपके शब्द विचारणीय हैं: (An unduly for giving god has nothing to prevent Him from becoming at times unduly tyrannous- The latter possibility is simply a Corollary from the former presumption] His mercies] if simply whims] will lack a uniform reliable rule to guide their dispensation)

कर्त्ता --- जो स्वतन्त्रता से कर्मो का करने वाला है अर्थात जिसके स्वाधीन सब साधन होते हैं, वह कर्त्ता कहाता है ।

कारण --- जिसको ग्रहण करके ही करने वाला किसी कार्य या चीज को बना सकता है अर्थात् जिसके बिना कोई चीज बन ही नहीं सकती, वह "कारण" कहाता है, सो तीन प्रकार का होता है ।

उपादान कारण --- जिसको ग्रहण करके ही उत्पन्न होवे वा कुछ बनाया जाय जैसे कि मट्टी से घड़ा बनता है; उसको "उपादान कारण" कहते हैं। (इसमें मिट्टी उपादान कारण है।)

निमित्त कारण --- जो बनाने वाला है जैसा कि कुम्हार घड़े को बनाता है इस प्रकार के पदार्थों को "निमित्त कारण" कहते हैं। इसमें कुम्हार निमित्त कारण है)

साधारण कारण --- जैसे चाक, दण्ड आदि और दिशा, आकाश तथा प्रकाश हैं इनको "साधारण कारण" कहते हैं ।

– महर्षि दयानन्द सरस्वती

दिव्य दयानन्द

जात- पात, छुआछूत,
का मिटाया भेद-भाव ,
प्रेम -रस बरसाया, ऋषि दयानन्द ने ।

ज्ञानी, ध्यानी, योगीराज, तपोनिष्ठ, ब्रह्मचारी,
ज्ञान -मार्ग दिखलाया,
ऋषि दयानन्द ने।।

आजादी का फूंका मंत्र, भारतीय मानुष में ,
गुलामी से था बचाया, ऋषि दयानंद ने।
कभी नहीं हो सकेंगे, 'ऋषि- ऋण' से उऋण,
सोतो को जगाया हमें, ऋषि दयानन्द ने।।१।।

सुंदर 'सुशील' सत्य, संघ आत्मविद सुधी,
भारत में मुक्ति का,
संदेश शुचि लाए थे।
शांति का विचार- धार, सत्य का प्रसार किया,
दीन- हीन दलितों को, गले से लगाए थे।।

वेद- भाष्य रचकर, नूतन प्रकाश दिया,
आर्य सामाजिक दस, नियम बनाए थे।
शशि और सूर्य-सम, दिव्य-तेज धारे हुए,
ऋषि दयानन्द इस, दुनिया में आए थे।।२।।

✍ डॉ० सुशील कुमार त्यागी 'अमित '
गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर हरिद्वार
मो० नं ९४५६०६९२७१

सूप कहै तो कहै, चलनिऔ कहै...

–✍ सन्त समीर

इन दिनों किसी का फ़ोन उठाइए तो सबसे पहले अमिताभ बच्चन की आवाज़ सुनाई देती है। हमारे मुम्बइया महानायक मोदी जी का दिया जुमला जब तक दवाई नहीं--, तब तक ढिलाई नहीं उवाचते हैं और सचेत रहने की हिदायत-- देते हैं। ऐसे ही लोगों के लिए हमारे अवध में एक मसल कही जाती है—सूप कहै तो कहै, चलनिऔ कहै जेहमें बहत्तर छेद। हाल यह है कि देश की जनता को वे लोग सचेत रहने और कोरोना से बचने का गुर बता रहे हैं , जो हमेशा सबसे ज़्यादा सचेत रहे, फिर भी इस वायरस की चपेट में आने से ख़ुद को नहीं बचा सके । अमिताभ बच्चन से पूछना चाहिए — ‘‘महापुरुष, आप तो हर ज़रूरी मौक़े पर मास्कधारी रहे , आम आदमी के सम्पर्क में आने से हमेशा बचे रहे , साधारण आदमी तो आपके बँगले के इर्दगिर्द फटक तक नहीं सकता-, दो गज की दूरी और हैण्डसेनेटाइजर के आप प्रचारक रहे — बावजूद इन सबके , आपको और आपके पूरे परिवार को वायरस ने कैसे धर दबोचा ? बचाव के जो तरीक़े आप पर पूरी तरह से फेल हो गए , वे हमारे ऊपर कैसे पास होंगे ?’’ मोदी जी के सबसे क़रीबी अमित शाह , अरविन्द केजरीवाल के सबसे क़रीबी उप मुख्यमन्त्री मनीष सिसौदिया तथा स्वास्थ्य मन्त्री सत्येन्द्र जैन बड़े सावधान लोग , फिर भी लपेटे में आ गए । कई प्रदेशों के मन्त्री , घरों में दुबके बैठे बड़े बड़े नेता कोरोना पॉजिटिव हो गए- । भाजपा नेता ज्योतिरादित्य सिन्धिया और उनकी अम्मा माधवी राजे , देश के रक्षा सचिव अजय कुमार भी बड़े सचेत और जागरूक थे, पर वायरस ने उनके भी फेफड़ों में डेरा जमा ही लिया। कुछ बड़े नाम तो कोरोना के नाम पर हमेशा के लिए दुनिया छोड़ गए । कुछ के घरवाले बाद में इस बात के लिए पछताए कि डर के मारे जल्दबाज़ी में अस्पताल न भागे होते तो शायद आज उनके प्रियजन आँखों के सामने होते ।

हर देश की यही कहानी है । सावधान लोग ख़ुद बच भले नहीं पा रहे हैं , पर अपनी वाली सावधानी आम जनता पर पूरी ज़िम्मेदारी से थोप रहे हैं । ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री बोरिस जॉनसन पहले ही पॉजिटिव निगेटिव हो चुके हैं- । ब्राजील के राष्ट्रपति बोल्सोनारो कोरोना पॉजिटिव , रूसी प्रधानमन्त्री मिखाइल मिशुस्तिन कोरोना पॉजिटिव , ईरान की उप राष्ट्रपति मासूमेह इब्तेकार और उप स्वास्थ्य मन्त्री इराज हरीरची कोरोना पॉजिटिव , ब्रेग्ज़िट मामले में मुख्य मध्यस्थ रहे यूरोपीय सङ्घ के मिशेल बर्नियर कोरोना पॉजिटिव , कनाडा के प्रधानमन्त्री जस्टिन ट्रूडो की पत्नी सोफ़ी कोरोना पॉजिटिव, स्पेन की उप प्रधानमन्त्री कारमेन काल्वो कोरोना पॉजिटिव, ऑस्ट्रेलियाई गृहमन्त्री पीटर डटन कोरोना पॉजिटिव । हॉलीवुड बॉलीवुड के तमाम लोग कोरोना-पॉजिटिव । ऐसे तमाम डॉक्टर कोरोना पॉजिटिव हुए हैं , जो सावधान रहने के बड़े बड़े जुमले गढ़ रहे थे। मज़ा यह कि ये-ही लोग समझा रहे हैं कि आप भी वही सावधानी कीजिए जो हम करते रहे हैं ।

हाल के कुछ शोध कह रहे हैं कि हम जाँच पाएँ या न जाँच पाँए, पर हर सात में से एक व्यक्ति कोरोना पॉजिटिव हो चुका है। इसका अर्थ तो यही निकलता है कि दुनिया के एक अरब लोग कोरोना की चपेट में आ चुके हैं। फिर एक एक कोरोना-मरीज़ को ढूँढ़ने की आख़िर कैसी नौटङ्की चल रही है? एक बात ग़ज़ब मज़ेदार है। सीरो रिपोर्ट है कि कोरोना से ठीक हुए एक तिहाई लोगों में एण्टीबॉडी नहीं बनी। कमाल कि शरीर किसी वायरस या बैक्टीरिया से लड़े और एण्टीबॉडी ही न बनाए। एक सफ़ाई यह दी जा रही है कि बनी तो थी , पर आनन फानन में ख़त्म हो गई। कहीं ऐसा तो नहीं कि हर सौ में-

कमाल यह भी है कि जो ! पैंतीस एकदम फेक टेस्ट हैं-तीस लोग कह रहे हैं कि यह वायरस हर पन्द्रह दिन में ख़ुद को बदलने की क्षमता रखता हैै, वे ही लोग वैक्सीन बनाने में लगे हैं। कैसे पूछा जाय कि भाई जब तक आपकी वैक्सीन आएगी, तब तक तो वायरस कई बार ख़ुद को बदल चुका होगा। क्या तब वैक्सीन के नाम का जप करके ही लोग ठीक होने लगेंगे? युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ लन्दन से एक डराने वाला ज़ोरदार शोध और आ गया है कि वायरस ने हाल के दिनों में कुछ ज़्यादा ही ख़तरनाक रूप से अपने आपको बदल लिया है। इस शोध के मुताबिक अस्सी प्रतिशत मरीज़ों में खाँसी, जुकाम और बुख़ार जैसे लक्षण अब नहीं आ रहे हैं , बल्कि वायरस शरीर पर कई दूसरे तरह से हमला कर रहा है। वायरस के चलते आँखों की रोशनी घट रही है , शरीर में झुर्रियाँ पड़ रही हैं , हृदयाघात की स्थिति भी पैदा हो रही है। शोध का निष्कर्ष है कि मामला साँस लेने में तकलीफ़ तक सीमित नहीं रहा; बल्कि दिमाग़, फेफड़े, शरीर के जोड़, आँखों की रोशनी, सुनने सूँघने की शक्ति-, सोचने विचारने की शक्ति-, त्वचा, नाखून और स्वाद तक कोरोना के निशाने पर आ चुके हैं। सोचिए कि इतना सब होने के बाद बचा क्या इस शोध के ! बाद आपके पैरों की अङ्गुली में सूजन आ जाए तो भी कोरोना कहा जा सकता है। सवाल फिर वही कि इतना बहुरूपिया वायरस है, तो वैक्सीन आख़िर कैसे बन सकती है? बहरहाल, हमारी ज़िम्मेदार सरकार की मंशा है कि भले वैक्सीन चालीस पचास प्रतिशत ही असरदार हो-, पर इसकी सुई तो हम जनता की बाँह में चोंकेंगे ज़रूर या फिर इसे भी दो.. बूँद ज़िन्दगी की बनाकर हलक के नीचे उतारने के परोपकार से पीछे नहीं हटेंगे। बाद में वैक्सीन ही वायरस सेज़्यादा ख़तरनाक हो जाए तो भी कोई बात नहीं , क्योंकि माई बाप-विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन है, सो वह जिसे ख़तरनाक कहे, ख़तरा उसी का मानना पड़ेगा। वैक्सीन विरोधी कुछ लोग कह रहे हैं कि वैक्सीन वास्तव में जनसङ्ख्या घटाने की साज़िश के तहत लाई जा रही है , पर मैं ऐसा नहीं मानता। हिन्दुस्तानी आदमी को बधिया भी कर दीजिए तो भी वह बच्चे पैदा करने से बाज नहीं आएगा। ऐक्सीन वैक्सीन से बच्चे पैदा करने से रोक पाना-रासायनिक रूप से बधियाकरण की , आसान नहीं। अलबत्ता ऐसी हरकतें आने वाली नस्लों को बरबाद कर दें तो आश्चर्य आद , नहीं। जो भी होमी इतने आराम से हिजड़ा बनने वाला नहीं है। हाँ, एक सच यह ज़रूर है कि वैक्सीनेशन की कहानी में नब्बे प्रतिशत ऐसा है , जिसने पूरी मानवता की इम्युनिटी ख़राब की है। ज़रूरत थी मनुष्य को स्वास्थ्य देने की , पर विज्ञान का ठेका धन्धेबाज़ों को देकर मनुष्य को अन्ततः बीमारियों के तोहफ़े दिए गए हैं। याद कीजिए कि आजकल के बच्चों को कितनी तरह की वैक्सीनों से गुज़रना पड़ता है। हेपेटाइटिसए-, हेपेटाइटिसबी-, रोटा वायरस , डिप्थीरिया, टिटेनस, पोलियो, मीजल्स, मम्स, रुबेला, बीसीजी, पीसीवी, वैरिकेला, एचपीवी वग़ैरह कम पन्द-से-कम--वग़ैरह-ृरह। बात तो यहाँ तक हो रही है कि तमाम सङ्क्रामकताओं को देखते हुए लगभग डेढ़ सौ वैक्सीन अभी और चाहिए। सोचिए कि जब डेढ़ सौ वैक्सीन लगने लगेंगी , तब क्या होगा इतनी ! वैक्सीन लगने के बाद उम्र भर की सेहत मिल जाने का जिनको भ्रम हो, उनका भ्रम भगवान् बनाए रखे , पर एक दिन पता चलेगा कि वैक्सीनेशन वाले आधुनिक मेडिकल साइंस का नब्बे प्रतिशत हिस्सा जनता को स्थायी रूप से बीमार बनने की साज़िश के तहत काम करता है। सेहत के हिस्से सिर्फ़ दस प्रतिशत। हाँ, दस प्रतिशत को ज़रूर स्वीकार करना चाहिए , क्योंकि यह सचमुच काम का है। बहरहाल , बीमार बनाए रखना इसलिए ज़रूरी है कि धन्धा चलाए रखने के लिए ग्राहक की आमद ज़रूरी है। ज़माना ख़रीदो और बेचो का है , तो चिकित्सा भी अब व्यवसाय है , सेवा नहीं। जैसे कि वकालत अब न्याय दिलाने के लिए सेवा जैसा काम नहीं , बल्कि धन्धा है। वकालत का धन्धा चलता रहे , इसके लिए झगड़ेझम्पट-, अपराध होते रहने ज़रूरी हैं। डॉक्टरी का धन्धा चलता रहे, इसके लिए बीमारों और बीमारियों का बने रहना ज़रूरी है। आप मरिए नहीं , सिर्फ़ बीमार बने रहिए , ताकि

दवाएँ ख़रीदने की ज़रूरत पड़ती रहे। आप पूरी तरह स्वस्थ हो जाएँगे तो कुछ लाख से भी आगे करोड़ करोड़ रुपये तक ख़र्च-करके ली जा रही डॉक्टरी की डिग्रियाँ मुनाफ़े का सौदा कैसे बनेंगी?

मैं बार बार यह सोचकर हैरान होता हूँ कि अगर कोरोना से-लोगों की जान बचाने की सचमुच चिन्ता है, तो जिन पद्धतियों में मरीज़ों के आसानी से ठीक होने के थोक भाव में प्रमाण हैं , आख़िर उनके ज़रिये इलाज की खुली छूट और उनका प्रचार क्यों नहीं? जिस एलोपैथी में अभी तक कोई कारगर इलाज नहीं, आख़िर उसी के तरीक़े से इलाज क्यों किया जाना चाहिए? यह सच्चाई कभी भी साबित की जा सकती है कि यदि हमारी परम्परागत पद्धतियों पर भरोसा किया गया होता तो कोरोना जैसे फ्लू वायरस के चलते कम कम हमारे देश-से-में एक भी व्यक्ति के मरने की स्थिति न पैदा होती। विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन, जो आयुर्वेद नेचुरोपैथी को-होम्योपैथी-इलाज का तरीक़ा मानता ही नहीं, के चक्कर में फँसकर मीडिया, सरकारी तन्त्र और अस्पतालों ने मिलकर एक लाख से ज़्यादा हिन्दुस्तानियों को मौत की नियति तक पहुँचा दिया।

अभी हफ़्ते भर पहले स्मरणशक्ति के मामले में विश्व रिकॉर्डधारी बिस्वरूप रॉय चौधरी से मेरी मुलाक़ात हुई। उन्होंने एक किताब की शक्ल में नेचुरोपैथी के ज़रिये आसानी से ठीक हुए करोना मरीज़ों का ब्योरा स्पष्ट रूप से छापा है। हमारी सरकार डब्ल्यूएचओ की पता नहीं कैसी गुलामी कर रही है कि अगर एलोपैथी से दो चार मरीज़ों के भी ठीक होने-का पता चले तो वह उसका ढोल पीटने लगती है, पर बिस्वरूप जैसे लोग पचास हज़ार लोगों को आसानी से ठीक कर दें तो भी उनके तरीक़े को किनारे कर दिया जाता है। मैं ख़ुद अब तक लगभग पाँच सौ लोगों को होम्योपैथी और आयुर्वेद से आसानी से ठीक कर चुका हूँ, पर सरकार की नज़र में इसका कोई मतलब नहीं है। मेरा बनाया पर्चा सोशल मीडिया पर वायरल हुआ तो उसे पढ़कर हज़ारों लोगों ने घर बैठे अपना और अपने पड़ोसियों का बड़ी आसानी से इलाज कर लिया। मेरे जैसे लोग इसका कुछ ऐसा ही अर्थ निकाल सकते हैं कि हमारी सरकार जाने अनजाने फार्मा कम्पनियों के-हित में काम कर रहे विश्व स्वास्थ्य सङ्गठन के इशारे पर नाच रही है। मज़ेदार यह भी है कि जो देश डब्ल्यूएचओ के कहे हिसाब से ज़्यादा नहीं चल रहे हैं, वे ज़्यादा मज़े में हैं।

इस पूरे कोरोना एपीसोड में मोदी जी ने परम मूर्खता दिखाई है। यह बात ठीक है कि रामजन्म भूमि , कश्मीर, तीन तलाक जैसे हिम्मत भरे कामयाब फ़ैसलों की हमारे जैसे तमाम लोग तारीफ़ करते हैं। कुछ किन्तु परन्तुओं के बावजूद ना-सूर बन चुकी इतनी बड़ी समस्याओं का एक झटके में ख़ात्मा कर देना ऐतिहासिक बात है , पर इन कुछ चीज़ों का गुणगान आख़िर हम कब तक करते रहेंगे? परेशानी यह कि मोदी जी करें भी तो क्या? एक तरफ़ 'अतिसमझदार-' सलाहकार, तो दूसरी तरफ़ विपक्ष का डर। विपक्ष का हाल यह कि सौ गधों की मौत होने के बाद एक 'पप्पू' गधा पैदा होता है। कुछ लोगों के लिए जैसे मूर्खता जन्मसिद्ध अधिकार है। वैसे , मेरा मानना है कि छल -छद्म से दूर ऐसे ही लोगों की राजनीति में ज़रूरत है, पर परेशानी यह कि यह आदमी दिमाग़ के दरवाज़े जैसे स्थायी रूप से बन्द किए रहने की ठाने बैठा है। अजब है कि इतने दिनों में कोरोना पर सत्तापक्ष से विपक्ष एक अदद ढङ्ग का सवाल तक नहीं कर सका है। आमजन जाए तो जाए कहाँ ? कुएँ में भहराए कि खाई में?

---मौतों का सच---

जो लोग कोरोना के चलते ज़िन्दगी की जङ्ग हार गए , उनके लिए दुःख व्यक्त कीजिए। विनम्र श्रद्धाञ्जलि , पर हर दिन पाँच दस लोगों का इलाज करते हुए सच्चाई कुछ ऐसी ही-महसूस कर रहा हूँ कि लोग या तो अपने भीतर के डर से मर -जैसी चीज़ को बड़ा मानकर बड़ी- रहे हैं या एक साधारण फ्लू खिलाकर मारे जा रहे हैं। समस्या बस- बड़ी दवाइयाँ खिला इतनी है कि एक आसान बीमारी का कठिन इलाज किया जा रहा है। एलोपैथी के कई संवेदनशील डॉक्टर अब कहने लगे हैं कि अस्पतालों में जल्दबाज़ी में अपनाए जा रहे ऑक्सीजन

और वेण्टिलेटर के तरीक़े ने ज़्यादातर लोगों को मौत के मुँह में धकेला है। यहीं पर ऑक्सीजन बनाम जीवन का एक प्राकृतिक विज्ञान समझ लेना चाहिए , जिसे आधुनिक चिकित्सा विज्ञान अभी तक ठीक से नहीं समझ पाया है। हमारी नाक वास्तव में सिर्फ़ ऑक्सीजन खींचने के लिए नहीं बनाई गई है। इसकी डिजॉइन साफ़ सुथरी खुली हवा लेने के- हिसाब से बनाई गई है। हवा सिर्फ़ ऑक्सीजन नहीं है। ऑक्सीजन हवा का बस एक हिस्सा है , वह भी महज़ बीस प्रतिशत, शेष अस्सी प्रतिशत तमाम दूसरी चीज़ें हैं। ऑक्सीजन से ज़्यादा तो नाइट्रोजन है। आर्गोन , कार्बन डाई ऑक्साइड के साथ तमाम दूसरी सूक्ष्म चीज़ें और वाष्प भी हैं। इन सबका शरीर के भीतर जाना ज़रूरी है। इन्हीं के चलते तो शरीर की कोशिकाएँ अपने लिए ज़रूरी चीज़ों की छँटाई करने का अभ्यास करती हैं। प्रकृति में हर कहीं द्वन्द्व का एक अद्भुत सिद्धान्त काम करता है। यह द्वन्द्व न हो तो कोई भी चीज़ कहीं भी टिकी नहीं रह सकती। मेडिकल की पढ़ाई में हमने बस ऑक्सीजन का रट्टा मार रखा है। याद रखने की बात है कि भले ही प्राणवायु ऑक्सीजन है, साँसों की डोर उसी के हाथ में रहती है, पर नाक से सिर्फ़ ऑक्सीजन ही ऑक्सीजन अन्दर जाने लगे तो भी हम ज़्यादा दिन ज़िन्दा नहीं रह सकते। अच्छे स्वास्थ्य के लिए ऑक्सीजन से भरपूर , साथ में अन्य तमाम ज़रूरी चीज़ों से भी भरपूर साफ़ सुथरी प्रदूषणमुक्त खुली हवा- हमारे फेफड़ों तक पहुँचनी चाहिए। यहीं पर यह बात समझ में आ जानी चाहिए कि सिर्फ़ ऑक्सीजन देने का मशीनी तरीक़ा दुरुस्त नहीं है और इस नाते बनावटी ऑक्सीजन पर पहुँचा दिए गए ज़्यादातर लोग ज़िन्दगी से हाथ धो बैठते हैं, बचते भी हैं तो बहुत दिनों तक परेशान रहते हैं। जब ऑक्सीजन स्तर कम होने लगे तो एक काम यह किया जा सकता है कि मरीज़ को पेट के बल लिटा दिया जाए। सिर के नीचे एक तकिया लगाइए, पेड़ू के नीचे और पञ्जों के पहले पैर के नीचे दो दो।- ज़रूरत लगे तो मुँह के पास पङ्खे से हवा दीजिए। कुछदेर बाद शरीर में ऑक्सीजन का स्तर बढ़ने लगेगा। न्यूमोनिया की हालत में बायोकैमी की Ferrum Phos-6X, Natrum Mur-6X और Natrum Sulph-6X की चार चार गोलियाँ- दस मिनट के अन्तर पर मुँह में रखकर चूसने-बारी से दस-बारी दस- तीन घण्टे पर दस- को कहिए। आराम मिलने पर तीन मिनटके ही पर्याय क्रम से दवाएँ देते रहिए। हो सकता है , इसी से कुछ बात बन जाए , अन्यथा साँस लेने में परेशानी के सारे लक्षण किसी अच्छे होम्योपैथ को बताइए , आपकी समस्या घण्टेदो घण्टे में हल होने लगेगी।-

अगर शोर न मचाया गया होता कि कोरोना महामारी है , तो वास्तव में यह महामारी न बनती। दिन रात शोर मचाने के- कारण बीमारी से मर जाने का डर लोगों के अवचेतन में भर चुका है। डर का मनोविज्ञान कुछ ऐसा है कि यह हार्मोन का चार सौ लोगों को- स्राव तक बुरी तरह बिगाड़ देता है। दो - किसी कमरे में बन्द करके बुरी तरह डरा दिया जाए तो दस बीस क ो हार्ट अटैक आ जाएगा और दस बीस डिप्रेशन के- निगेटिव की ग़लत रिपोर्ट पा जाने-शिकार हो जाएँगे। पॉजिटिव वाले कई लोगों का अध्ययन करने के बाद, जो डॉक्टर कोरोना को महामारी मानते हैं, उनसे मैं एक प्रयोग करने को कहता हूँ। आप एक तरफ़ पचास सौ साधारण फ्लू के रोगियों क- ी रिपोर्ट लीजिए और दूसरी तरफ़ इतने ही कोरोना रोगियों की। करना बस इतना है कि फ्लू वालों को बताइए कि उन्हें गम्भीर कोरोना सङ्क्रमण है और कोरोना वालों को बताइए कि वे बस सामान्य फ्लू से पीड़ित हैं। चार छह दिन बाद नतीजा कुछ- ऐसा दिखेगा कि वास्तविक फ्लू वालों कातो मरना जीना लग- जाएगा, जबकि वास्तविक कोरोना वाले ज़्यादा आसानी से ठीक होने लगेंगे ।

बात दरअसल डर के मनोविज्ञान की है। इस बीमारी को बड़ा बनाने के लिए इसी का इस्तेमाल किया गया है। ख़बरें छन - छनकर कुछ ऐसी आ रही हैं कि फार्मा कम्पनियाँ इसे सन् 2025 तक बनाए बचाए रखने के हिसाब से काम कर रही हैं।- लोगों के दिमाग़ को कुछ इस तरह से प्रशिक्षित कर दिया जाना चाहिए कि'माडर्न मेडिकल सिस्टम' को वे पूरी तरह स्वीकार

कर लें , ताकि छोटी से छोटी परेशानी के लिए भी लोग अस्पताल जाएँ और पैसे ख़र्च करें । यह हो जाए तो वैकल्पिक चिकित्सा पद्धतियों को जादू टोना जैसा घोषित करके उन पर- आसानी से पाबन्दी लगाई जा सकती है और परिदृश्य से बाहर किया जा सकता है। कुछ देशों में ऐसा किया जा चुका है कि कुत्ता भी सूँघ ले कि आपकी जेब में आयुर्वेद या होम्योपैथी की दवा रखी है तो आपको जेल हो जाए। हम 'न्यू वर्ल्ड ऑर्डर' की ओर बढ़ रहे हैं।

कोरोना कितना घातक है , इसे समझने के लिए प्लेग से जुड़ा एक सच्चा क़िस्सा सुनिए। प्लेग यानी ब्लैक डेथ। प्लेग को मौत का पर्याय माना जाता था। सन् 1904 में दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सबर्ग की कुली बस्ती या कहें भारतीयों की बस्ती में प्लेग का जानलेवा आक्रमण हुआ। महात्मा गान्धी जान की परवाह किए बिना सेवा में जुट गए। काफ़ी लोग मौत के मुँह में समा चुके थे। गान्धी ने एक गोदाम की साफ़ सफ़ाई कर उसे- अस्पताल का रूप दे दिया। एक तरफ़ एलोपैथी के तरीक़े से इलाज चल रहा था और दूसरी तरफ़ गान्धी ने अपना प्राकृतिक चिकित्सा का तरीक़ा अपनाया। गान्धी ने मिट्टी की पट्टी वग़ैरह से इलाज किया। पहले से मरणासन्न दो लोग मौत के शिकार हुए, पर बाक़ी सारे मरीज़ों को गान्धी ने बचा लिया। गान्धी ने प्राकृतिक चिकित्सा के अनुसार अपने आहार की मात्रा में कमी कर दी और मरीज़ों के बीच रहने के बावजूद प्लेग उनको छू तक नहीं पाया। दूसरी तरफ़ एलोपैथी का इलाज करवा रहे सारे लोग मारे गए। यहाँ तक कि उनकी सेवा में लगी नर्स भी कुछ दिनों बाद सङ्क्रमण का शिकार होकर इस दुनिया से चल बसी। बाद में जब स्पेनिश फ्लू आया तो उस समय भी गान्धी का तरीक़ा अपनाने वाला एक भी व्यक्ति मौत का शिकार नहीं हुआ। अतीत के इस सच से यह समझने की कोशिश कीजिए कि कोरोना से बचने का बेहतर तरीक़ा क्या है। इलाज और एकदम आसान इलाज हमारे पास मौजूद है, पर हम जुमला उछालने में लगे हैं कि जब तक दवाई नहीं तब तक ढिलाई नहीं। गान्धी के नाम की सिर्फ़ माला फेरते रहेंगे या उनके काम पर कभी ध्यान भी देंगे?

कोरोना के बढ़ते ख़तरे का एक सच और समझिए सङ्क्रमण के बाद जो व्यक्ति बिना डरे प्राकृतिक चिकित्सा , होम्योपैथी या आयुर्वेद के सहारे रहा, वह चार छह दिन में आराम से उबर- गया, न्यूमोनिया जैसी स्थिति बनने की नौबत ही नहीं आई , लेकिन जिसने अति सावधानी में फटाफट क्रोसीन , पैरासीटामाल, डोला वग़ैरह लेना शुरू किया , वह 'आ बैल मुझे मार' वाली स्थिति में फँसा। बुख़ार की ये ऐसी दवाएँ हैं , जिन्हें लोग बिलकुल सुरक्षित घरेलू इलाज जैसा मानकर लेना शुरू कर देते हैं। मुझे फ़ोन करने वाले ज़्यादातर मरीज़ साँस की परेशानी झेल रहे होते हैं। शक होने पर पूछता हूँ तो बताते हैं कि अब तक वे क्रोसीन , पैरासीटामाल या डोला वग़ैरह ले रहे थे। हाँ, सबसे सुरक्षित दवाएँ ये ज़रूर हैं , पर हो यह रहा है कि इन दवाओं को लेने के बाद बुख़ार अक्सर ग़ायब हो जा रहा है। मरीज़ को लगता है कि वह ठीक हो रहा है, पर एक दो दिन- बाद साँस लेने में परेशानी शुरू हो जाती है और फिर अस्पताल के अलावा कोई और रास्ता नहीं दिखाई देता। बात सीधी है। यह वायरस शरीर के कई अङ्गों पर असर डाल सकता है पर मुख्य र ,ूप से श्वसन तन्त्र पर हमला करता है। शरीर तापमान बढ़ाकर उसे मारने की कोशिश करता है। शरीर का तापमान बढ़ता ही इसीलिए है कि यह वायरस से लड़ने का शरीर का हथियार है। जैसे जैसे वायरस मरता है-, वैसे वैसे- तापमान सामान्य होने की तरफ़ बढ़ता है। प्राकृतिक चिकित्सा या ह ोम्योपैथी वग़ैरह का तरीक़ा जब आप अपनाते हैं तो शरीर को वायरस से लड़ने में सहयोग मिलता है , पर एलोपैथी विधि से जब आप बुख़ार घटाने के लिए शरीर में रसायनों की खेप पहुँचाते हैं, तो बुख़ार तो घट जाता है , पर घटे तापमान में वायरस को फेफड़ों तक पहुँचने का और बढ़िया मौक़ा मिल जाता है। नतीजा यही आ रहा है कि बुख़ार तो ग़ायब रहता है , पर दो तीन दिन बाद छाती जकड़ने लगती है और साँसें भारी- तैसे बाहर आ जाते- होने लगती हैं। मज़बूत लोग बचकर जैसे हैं, पर कमज़ोर लोग जीवन से हाथ धो बैठते हैं। कुछ लोग

ऊपर से मज़बूत दिखाई देते हैं, पर भीतर से मौत का भय इतनी गहराई से महसूस करते हैं कि अन्ततः वे भी एक दिन ऊपर पहुँच जाते हैं।

एक पुराना क़िस्सा है , जिसे रवीन्द्र शर्मा अपने ही (गुरुजी) अन्दाज़ में सुनाते थे। किसी ने एक ब्राह्मण को बकरी का बच्चा दान दे दिया। बकरी का बच्चा ले जाते हुए उसे चार ठगों ने देखा तो योजना बनाई कि इसे कैसे हथियाया जाय। वे चारों जल्दी कुछ दूरी पर- जल्दी आगे बढ़कर रास्ते में कुछ-खड़े हो गए। पहला ठग मिला तो उसने ब्राह्मण को लक्ष्य करते —हुए कहा''क्या घोर कलियुग आ गया है कि एक विद्वान् ब्राह्मण गधे का बच्चा लेकर जा रहा है !'' ब्राह्मण हँसा कि कैसा बेवकूफ़ आदमी है कि बकरी को गधा समझ रहा है ! आगे बढ़ा तो कुछ देर बाद दूसरा ठग मिला। ठग ने देखते ही कहा—''क्या महाराज, आप भी कैसे हो कि गधे का बच्चा लिए जा रहे हो !'' ब्राह्मण कुछ अचकचाया , पर आगे बढ़ गया। कुछ देर बाद तीसरा ठग मिला तो उसने भी जब 'गधे का बच्चा' कहा तो ब्राह्मण को अपने ऊपर कुछ कुछ अविश्वास-हो यह गधे का ही-न- होने लगा और सोचने लगा कि हो बच्चा हो। और जब, चौथे ठग ने कहा कि यह गधे का बच्चा कहाँ पा गए महाराज जी तो ब्राह्मण को पूरा विश्वास हो गया... कि यह गधे का ही बच्चा है औरउसे वहीं छोड़कर वह भाग खड़ा हुआ।

तो देश और दुनिया में यही हो रहा है। मीडिया और सरकार मिलकर दिन डराकर विश्वास दिलाने में लगे हैं- रात हमें डरा-डरकर एक आसान बीमारी को महामारी बनाने में-और हम डर लगे हैं। बीमारी नहीं, हमारा डर हमें मौत की ओर धकेल रहा है। मीडिया इन मौतों के लिए सबसे बड़ा ज़िम्मेदार है।

अभी तो यह अँगड़ाई है , आगे बहुत लड़ाई है। जाड़े के दिन आने को हैं। सर्दी जुकाम की परेशानी बढ़ेगी और ज़्यादातर-जुकाम वाले कोरोना पॉजिटिव दिखेंगे। या तो लोग-सर्दी समझदारी से जिएँ, ठीक सर्दी फ्लू वाली सावधानि-जुकाम-याँ बरतें और मस्त रहें; अन्यथा, हर छींक पर डराने को महामारी का भूत है ही। बहुत समय बाद यमराज को एकमुश्त काम मिला है, आख़िर उनके दूतों को भी रोज़गार चाहिए कि नहीं!

याद रखने की बात है कि डर एक ऐसी चीज़ है , जो मज़बूत से मज़बूत आदमी की इम्युनिटी भी अचानक ख़त्म कर सकती है।

---और अन्त में—

1. जो लोग होम्योपैथी के सहारे बचाव के रास्ते पर हैं , वे याद रखें कि अगर दवा लिए हुए बीस पच्चीस दिन हो गए हों तो-- एक बार फिर तीन दिन तक लगातार सवेरे आर्सेनिक अल्बम 30 और शाम को एनफ्लूएञ्जीनम -200 की एक ख़ुराक ले सकते हैं। हमेशा याद रखना चाहिए कि तीन दिन तो तीन दिन , ज़्यादा से ज़्यादा चार दिन; अन्यथा, अति सुरक्षा के चक्कर में मनमर्ज़ी तरीक़े से ज़्यादा दिनों तक लगातार दवाएँ लेंगे तो आप के शरीर में फ्लू के लक्षण पैदा हो सकते हैं , क्योंकि होम्योपैथी में जो दवा जिस चीज़ के लिए बनी होती है , ज़्यादा दिनों तक अललटप्प तरीक़े से लेते रहने पर स्वस्थ आदमी में वैसे ही लक्षण पैदा भी करती है।

2. जिन लोगों को प्रचलित आयुर्वेदिक काढ़े में मौजूद गर्म औषधियों की ज़्यादा मात्रा से बवासीर या अम्लता वगैरह की परेशानी होती है , वे एक अलग नुस्ख़ा बनाकर अपनी इम्युनिटी बढ़ा सकते हैं। दालचीनी , इलायची, जीरा, हल्दी, सोंठ, मुलहठी, काली मिर्च , काला नमक , सेंधा नमक और तुलसी के पत्तों को बराबर मात्रा में लेकर महीन पीस लीजिए। अगर सबकी एक एक ग्राम मात्रा है-, तो इतना ही यानी एक ग्राम नींबू पाउडर मिलाइए। इसका दसवाँ हिस्सा यानी क़रीब सौ और मूली क्षार भी मिला (जौक्षार) सौ मिलीग्राम यवक्षार-लीजिए। इसी अनुपात में ज़्यादा चूर्ण बनाकर रख सकते हैं। सौ मिलीलीटर पानी के लिए दस ग्राम काढ़ा चूर्ण काफ़ी है। बनाने का तरीक़ा यह है कि पहले पानी गर्म कर लीजिए और फिर इसमें काढ़ा चूर्ण डाल दीजिए। स्वाद भर को देशी खाँड़ मिलाइए और पीजिए। जितनी बार चाय पीते हैं, उतनी बार इसे पी सकते हैं। यह आपका वज़न नियन्त्रित करने में भी मददगार

हो सकता है। इसे ताउम्र ले सकते हैं।

3. कोरोना से बचना हो या लड़ना हो , हल्दी का चूर्ण पाँच - छह ग्राम यानी आधा चम्मच सवेरे ख़ाली पेट गर्म पानी से नियमित लीजिए। फेफड़े सलामत रहेंगे तो बहुत कुछ सलामत रहेगा।

4. सर्दियों में जब ताज़ा आँवला उपलब्ध हो तो आँवले के दो तोले रस में एक चम्मच शहद मिलाकर सवेरे या सवेरे शाम- सी की गोलियाँ खाने की- दोनों समय लीजिए। विटामिन ज़रूरत नहीं पड़ेगी। ताज़ा आँवला न मिले तो आँवले का एक चम्मच चूर्ण नियमित ले सकते हैं।

आर्ष क्रान्ति के सुधी पाठकों से

समाज सुधार, संस्कृति उन्नयन और धर्म जिज्ञासा क्षेत्र की अनेक पत्रिकाएं सोशल मीडिया पर आपने देखी और पढ़ी होगी। आर्ष क्रांति पत्रिका का तेवर और स्वरूप कैसा है इसे जानने की जिज्ञासा आपके मन में पैदा होती है, तो यह समझना चाहिए आप एक विचारवान और जिज्ञासु किस्म के बुद्धिमान व्यक्ति हैं। हमें आप जैसे क्रांतिकारी और प्रगति गामी विचारवान व्यक्ति का साथ चाहिए। फिर देर किस बात की। नीचे लिंक पर जाइए और फार्म भर कर हमें भेज दीजिए। अब आप जुड़ गए हैं ऐसी संस्था और पत्रिका से जो एक आदर्श समाज, उन्नतशील संस्कृति और मानव मूल्यों के धर्म की स्थापना के लिए कृतसंकल्प है। आप एक शुभ संकल्पवान व्यक्ति हैं और यह पत्रिका भी शुभ संकल्पों को मूर्त रूप देना चाहती है, एक आदर्श समाज निर्माण में हमारी संस्था और पत्रिका से जुड़कर आप अपना अमूल्य योगदान दे सकते हैं। आपका हमें इंतजार रहेगा।

इस लिंक पर क्लिक करके यह फार्म अवश्य भरें

http://bit.ly/aarshkranti

नोट - फॉर्म को भरने के लिए अपने मोबाइल/ कम्प्यूटर में इन्टरनेट अवश्य चालू रखे

राष्ट्र अस्मिता के हमले

भारतवासी भूल न जाना राष्ट्र अस्मिता के हमले
घायल ये इतिहास पड़ा है बन्द करो घातक जुमले।।

ऊँच- नीच और भेदभाव में, लुटे-पिटे हो तुम सारे
गलती पर गलती करते हो, जागो- जागो अब प्यारे
भूल न जाना क्रूर सिकंदर, भूल न जाना गजनी को
भूल न जाना तुगलक, गौरी, भूल न जाना मदनी को
ऐक्य बनाकर चलो सँभलकर याद करो घाती पिछले।।

बाबर को तुम भूल न जाना उसके रौरव जुल्मों को
मंदिर ढाए, बुर्ज बनाए देखो सारे उल्मों को
भूल ना जाना नादिरशाह के खूनी रक्तापातों को
जुल्म न भूलें औरँगजेबी शाहजहाँ की घातों को
अकबर के भी जुल्म न भूलो फिर बन जाओगे पुतले।।

आसफ खां को भूल न जाना मत भूलो शाह सूरी को
नहीं बाजबा खान को भूलो मत भूलो अजमूरी को
देश को लूटा सब मुगलों ने जमकर ही विनाश किया
अहंकार और जातिवाद ने भारत सत्यानास किया
माटी की सब लाज बचाओ याद करो कैसे कुचले।।

भूल न जाना तुम गोरों को कैसे कत्लेआम किए
भाई- भाई खूब लड़ाए सत्ता अपने नाम किए
भूल न जाना डलहौजी को जिसने गोली प्रहार किए
नहीं भूलना डायर को भी मानव नरसंहार किए
निर्दोषों का खून न भूलें भूलों से भी ना पिघले।।

लूटा जमकर सभी खजाना देश मेरा कंगाल किया
छोटे से इंग्लैंड ने खुद को जमकर मालामाल किया
देश बाँटकर, लूटपाट कर वैभव अपना बढ़ा लिया
मैकाले शिक्षा पद्धति से नया बवंडर खड़ा किया
काले अंग्रेजो जागो करो न नहले पर दहले।।

आजादी के बाद देखता भारत की तस्वीर को
क्या सपने थे बलिदानी के भूल गए सब पीर को
स्वारथ में सब लीन हो गए छोड़ें अपने तीर को
श्रद्धांजलियाँ अर्पित कर दो अनगिन भगत सुवीर को
भूल न जाओ शहादतों को कुछ बन जाओ तुम उजले।

— ✍ डा0 राकेश चक्र
मुरादाबाद उ.प्र
चलभाष - 9456201857

मृत्यु के पार : एक विचार

– ✍ अखिलेश आर्येन्दु

उपनिषद् में मृत्यु से पार अमृत प्राप्तकर अमर होने का संकल्प निश्चित ही मानव के लिए चुनौती है। वैज्ञानिक इस खोज में लगे हैं कि किस तरह से भौतिक शरीर को मृत्यु से बचाया जाए। अभी तक जितनी खोज हुई है उसमें कुछ ऐसी संभावना नहीं दिखती जिससे भौतिक शरीर को हमेशा के लिए मरने से बचाया जा सके। भौतिक शरीर को एक न एक दिन मरना है, यह विचार 90 प्रतिशत लोगों में बना रहता है। दस प्रतिशत लोग इसके सम्बंध में अधिक चर्चा नहीं करते। फिर भी मृत्यु का विचार कहीं न कहीं क्षीण होती शरीर के साथ आता ही है। विचार और माता–पिता से प्राप्त जीवन–संस्कार व्यक्ति की स्थिति का निर्धारण करते हैं। यदि एक क्षण के लिए भी मृत्यु का विचार न आए तो शायद शरीर की क्षीणता के साथ मृत्यु की संभावना का विचार न आए। लेकिन ऐसा होता नहीं है। इसलिए सबसे पहले मृत्यु के विचार से ऊपर उठने की आवश्यकता है। आमतौर पर हम 'मृत्यु के अनुशरणकर्ता' बने रहते हैं। एक व्यक्ति को मरते हुए देखते हैं तो महात्मा बुद्ध की तरह सोचने लगते हैं कि क्या मैं भी मरूंगा? किसी व्यक्ति को बीमार होते देखते हैं तो विचार आता है–क्या मैं भी रोगी बन जाऊंगा? और जब बूढ़े व्यक्ति को देखते हैं तो यह विचार आ जाता है कि मैं भी एक न एक दिन बूढ़ा होऊंगा। .....जो जन्म लिया है वह मरेगा...ऐसा विचार पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है। यह कहा जा सकता है कि मृत्यु का विचार हमारे डीएनए में समाया हुआ है। डीएनए से मृत्यु का विचार निकाले बिना क्या भौतिक शरीर को बूढ़ा होने या मृत्यु से बचाया जा सकता है? यह ऐसा प्रश्न है जो भौतिक शरीर को मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले विश्व वैज्ञानिकों को अपने अनुसंधान का सबसे महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाना चाहिए।

अब प्रश्न उठता हैकि जब सब कुछ नश्वर है, क्षण भंगुर है, फिर रात–दिन भौतिक संसाधनों को जुटाने और दूसरों का शोषण और हिंसा करके अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए इतना अनर्थ मनुष्य क्यों करता है? शरीर, धन–दौलत, संतान, भौतिक सुख के अकूत संसाधन जुटाने के लिए सारा जीवन क्यों लगा देते हैं? इसी के साथ यह भी विचारणीय प्रश्न है कि जब सब कुछ नाशवान् होने पर मनुष्य भौतिक संसाधनों को जुटाने में सारा जीवन लगा देता फिर यदि वह शरीर सहित अमर हो जाएगा तो क्या करेगा? ये अनेक प्रश्न सनातन काल से मानव के सामने चुनौती बने रहे हैं। इन प्रश्नों को छोड़ हम ऐसे प्रश्न पर आते हैं जिनका उत्तर हमारे पास न होते हुए भी हम निरुत्तर नहीं हैं।

भौतिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन में एक मूलभूत अन्तर है। वह है शरीर और आत्मा के सम्बंधों पर विचार का। भौतिक जीवन मात्र भौतिक शरीर के लिए या द्वारा कार्य करता है और आध्यात्मिक जीवन आत्मा और परमात्मा के लिए और उनके सम्बंधों के बारे में विचार करता है। एक साध्य और संचालक के सम्बंध में बताता है तो दूसरा भौतिक शरीर और भौतिक संसाधनों के सम्बंध में। पूर्वजन्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत मृत्यु, कर्म और भोग (कर्मफल) पर आधारित है। यह वैदिक आध्यात्मिक विचार और सिद्धांत है। भौतिकता को ही महत्त्व देने वाला सिद्धांत और विचार न तो पूर्व जन्म को मानता है और न तो पुनर्जन्म को। अभी तक वैज्ञानिक पदार्थ के उत्पन्न होने, उसके गुण और कार्य को लेकर अनुसंधानरत हैं। अभी चेतना के सम्बंध में उनकी खोज प्रारम्भ ही नहीं हुई है। वेद में पदार्थ विद्या और चेतना विद्या दोनों का वर्णन है। इसलिए वेद के माध्यम से ही जीवन, मृत्यु, जन्म और जीवन यात्रा को समझा जा सकता है। वेद सत्य विद्या और पदार्थ विद्या के गहनतम ज्ञान हैं। सभी सत्य विद्याओं और पदार्थ विद्याओं को समझना इतना कठिन है जितना कि ब्रह्म को जानना और समझना। संभावना हर चीज की होती है। लेकिन मृत्यु को जीतने की संभावना बिना सत्य विद्या और सम्पूर्ण पदार्थ विद्या के समझे, लगभग असम्भव ही है। भविष्य किसने देखा है? आप कहेंगे किसी ने नहीं। अरे भाई! भविष्य की कोई सत्ता ही नहीं है। इसलिए भविष्य में मृत्यु पर विजय प्राप्त करने की

संभावना के सम्बंध में बात करना ही बेकार है। मृत्यु व्यक्तिगत और पंच तत्त्वों के संगठन का बिखर जाना ही तो है। मृत्यु पर विजय प्राप्त करने का अर्थ है जिन पंच भौतिक तत्त्वों से शरीर बना है उन पंच तत्त्वों को हमेशा जोड़े रखना। जिन पंच तत्त्वों से भौतिक शरीर बना है उनके अपने गुण और स्वभाव हैं। माता–पिता के द्वारा कोई जीव शरीर धारण करता है तब उसमें माता–पिता के गुण, कर्म, स्वभाव और संस्कार तो आते ही है आत्मा के द्वारा उस व्यक्ति के पूर्व जन्म में किए गए कर्म और संस्कार भी आते हैं। यह वैदिक सिद्धांत है। यह 'प्रारब्ध' है। प्रारब्ध को सुधारा नहीं जा सकता। पीढ़ी दर पीढ़ी मृत्यु का विचार और भय आगे बढ़ते रहते हैं। प्रश्न उठता है क्या इन दोनों को आने वाले समय में विज्ञान के द्वारा रोका जा सकता है? माता–पिता में मृत्यु के विचार उनके माता–पिता और पूर्वजों से मिला है। और यह मृत्यु का विचार और भय आने वाली पीढ़ी में खुद–ब–खुद आते रहते हैं। यदि मनुष्य को जंगल में भी छोड़ दिया जाए तब भी उसे मृत्यु के विचार और भय से मुक्त नहीं कराया जा सकता।

मेरा अपना विचार है कि संसार की क्षणभंगुरता और एक प्राणी से दूसरे प्राणी के द्वारा भय पैदा करने का क्रम कभी समाप्त नहीं हो सकता। मनुष्य सामाजिक प्राणी है। समाज में रहकर वह सांसारिकता से बच नहीं सकता। यहां तक कि योगी जन भी किसी न किसी रूप में भौतिक संसार से अपनी गतिविधि किसी न किसी रूप में जारी रखते हैं। जो लोग कहते हैं कि वे मृत्यु से नहीं डरते, वे लोग यह स्वीकार तो करते ही हैं कि मृत्यु असंभावी है। उससे मुक्त नहीं हुआ जा सकता है। हां, मृत्यु को लेकर डरना एक अलग बात है। यदि मृत्यु से न भी डरें तब भी तो मृत्यु होगी ही। प्रश्न यह है कि मृत्यु पर विजय कैसे प्राप्त की जाए? इस प्रश्न पर ही उपनिषद्कार मृत्यु के विचार से मृक्त होकर अमृत अर्थात् अमरता की ओर बढ़ने की प्रेरणा दे रहे हैं।

भौतिक जगत् में प्रतिपल हमारे मन में मृत्यु, मृत्यु का भय और मृत्यु के विचार बने रहते हैं। इसलिए जब तक मनुष्य भौतिक जगत् में रहता है तब तक उसमें ये विचार बने रहते हैं। लेकिन जैसे ही मनुष्य एक साधक (योगी) के रूप में भौतिक संसार से अलग मात्र आत्मा और परमात्मा के सम्बंध में विचार करता है वैसे ही मृत्यु, मृत्यु का भय और मृत्यु के विचारों से मुक्त हो जाता है। लेकिन इसके बाद भी उसको अपने भौतिक शरीर को कभी न कभी त्यागना ही पड़ता है। जिन तीन शरीरों का वर्णन शास्त्रों में किया गया है उनमें सूक्ष्म शरीर में वर्षों बिना किसी भय के रहा जा सकता है। लेकिन सूक्ष्म शरीर का इस भौतिक संसार से कुछ भी लेना–देना नहीं। स्थूल शरीर का जन्म और मृत्यु की यात्रा को ही सामान्यता हम जानते हैं। कारण शरीर के सम्बंध में भी सामान्य व्यक्ति को कोई जानकारी नहीं है। इसलिए मृत्यु का विचार और मृत्यु का भय भौतिक संसार वाली स्थूल शरीर के साथ ही रहते हैं।

विभिन्न मत मतांतरों में मृत्यु के विचार और भय के सम्बंध में अनेक तरह के विचार प्रचलित हैं। इस्लाम में मृत्यु और मृत्यु का भय का जो रूप है कुछ वैसा ही ईसाई मत में है। लेकिन अमरता का विचार मात्र वैदिक दर्शन का है। यह इस लिए कि इस्लाम और ईसाइयत में पदार्थ विद्या पर कोई अभिममत ही नहीं है। बस इतना है–अल्लाह ने दुनिया छह दिन में बनाई। कुन कहा और दुनिया बन गई। यह भी पता नहीं लग सका है कि यह 'कुन' क्या है। इस कुन के कहने से ही दुनिया कैसे बन गई? इसी प्रकार ईसाईमत के गाड की कहानी है। मृत्यु से छूटकर अमरता की ओर बढ़ने या योग साधना के द्वारा अमरता का संकल्प वैदिक दर्शन के अतिरिक्त अन्य किसी दर्शन में नहीं है। वैदिक दर्शन में जितना विस्तृत ज्ञान भौतिक जगत् और अभौतिक जगत् के सम्बंध में वर्णित है उतना अन्य किसी दर्शन में नहीं। मृत्यु का विचार और मृत्यु का भय भौतिक और आध्यात्मिक दोनों विद्याओं में वर्णित है। इसलिए मृत्यु के विचार और मृत्यु के भय कोई सामान्य बातें नहीं हैं। हृदय की धड़कन का बंद हो जाना या मात्र आंख मुद जाना मृत्यु नहीं है बल्कि मृत्यु चेतन सत्ता का समाप्त हो जाना भी है। चेतना की सत्ता जब तक रहती है तब तक ही जीवन का स्पंदन है। इसलिए अध्यात्म सर्व प्रथम चेतना पर विचार करता है, क्योंकि चेतना की सत्ता के बिना कोई भी गतिविधि (स्पंदन) संभव ही नहीं है। चेतना की मृत्यु नहीं होती। मृत्यु पंच तत्त्वों की भी नहीं होती, क्योंकि इनकी भी अपनी

सत्ता है। मृत्यु पंच तत्त्वों का सम्बंध समाप्त होने का नाम है। अर्थात् शारीरिक अमरता प्राप्त करने के लिए पंच तत्त्वों के संगठन और सम्बंधों को स्थायित्व प्रदान करना आवश्यक है। क्या विज्ञान इस कार्य को कर सकता है? हमें ध्यान रखना होगा पंच तत्त्वों के अपने–अपने गुण, कर्म और स्वभाव हैं। शरीर जिन पंच तत्त्वों के द्वारा बना होता है उनके गुण, कर्म और स्वभाव को परिवर्तित कर पाना क्या सम्भव है? मेरा विचार है अद्यतन विज्ञान का कोई भी विषय इस पर आधारित नहीं है। इसलिए भविष्य में विज्ञान इस सम्बंध में कुछ आगे बढ़ पाएगा कहना कठिन है।

मन, प्राण, आत्मा, बुद्धि, विवेक, चेतना और चिति शक्ति ये सभी पंच तत्त्वों के द्वारा बनी शरीर में ही होते हैं। जैसे ही पंच तत्त्व स्वतंत्र हुए अर्थात् हर तत्त्व स्व में विलीन हुआ वैसे ही मन, प्राण, आत्मा, बुद्धि, विवेक और चेतना सभी की सारी गतिविधियां ठपा पड़ जाती हैं। मेरा मानना है मृत्यु का भय पंच तत्त्वों के साथ छोड़ जाने के कारण है। जैसे कोई रथी का सारथी जब उसका साथ छोड़ दे तो रथी को भय उत्पन्न हो जाता है, कुछ इसी तरह की स्थिति पंच तत्त्वों का प्राण, मन, आत्मा, बुद्धि और चेतना से सम्बंध छूट जाने से होती है। जीवन और मृत्यु के सम्बंध में एक अन्य महत्व पूर्ण बात है जिसे जानना आवश्यक है। जन्म के उपरान्त जब व्यक्ति कुछ जानने समझने लायक हो जाता है तो वह व्यतीत होते समय को जीवन के साथ गिनने लगता है। साथ में उसे बताया जाता है कि जिंदगी का कोई भरोसा नहीं, इस लिए समय का पूरा उपयोग करना चाहिए। जैसे–जैसे आयु बढ़ती जाती है वैसे–वैसे उसमें मृत्यु का भय बढ़ता जाता है। यह संस्कार उसे उस समाज से मिलता है जिस समाज में वह पढ़ा–लिखा और आगे बढ़ा।

मृत्यु विचार और मृत्यु भय के साथ आत्मा की सत्ता के वैदिक दर्शन के सम्बंध में जान लेना आवश्यक है। वैदिक दर्शन के अनुसार आत्मा इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञानसामग्री का संश्लेषण–विश्लेषण करती, भिन्न–भिन्न अनुभवों में एकत्व स्थापित करती और आवश्यकता–अनुसार उसका उपयोग करती है। प्रत्येक इन्द्रिय अपने विषय का ग्रहण और प्रतिसंधान कर सकती है, अन्य इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य विषय का नहीं। किन्तु जिस वस्तु को हम आंख से देखते हैं, उसी को हाथ से छूकर कहते हैं कि जिसे आंख से देखा था उसी को हाथ से छू रहे हैं। खाद्य पदार्थ को आँख से देखते ही मुँह में पानी भर आता है। यदि इन्द्रियाँ ही ज्ञाता होती तो ऐसा कभी न होता, क्योंकि एक के देखे–सुने का अन्य का स्मरण नहीं हो पाता। इन्द्रियाँ भौतिक (प्रकृति से उत्पन्न) हैं, अतः चेतन उसका गुण नहीं हो सकता। इसलिए उनका उपयोग करने के लिए कर्त्ता के रूप में चेतनतत्त्व की आवश्यकता है। आत्मा के सम्बंध में वैदिक दर्शन की सूक्ष्म जानकारी से यह स्पष्ट हो गया कि जैनादि दर्शनों में जहाँ शरीर को ही आत्मा माना गया है वहाँ वैदिक दर्शन में आत्मा की सत्ता ही सर्वोपरि माना गया है। आत्मा से ही इन्द्रियाँ और प्राण, मन व इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। मृत्यु का भय आत्मा को लेकर नहीं होता बल्कि नश्वर शरीर का आत्मा का साथ छोड़ने का होता है। शरीर की नश्वरता को समाप्त किए बिना मनुष्य के अमरता का कोई अर्थ नहीं है। आत्मा तो हमेशा अजर और अमर है। वह तो मरता नहीं, मरता शरीर है। और यह मरना क्या होता है, इसे मैं स्पष्ट कर चुका हूं।

विज्ञान ने कोशिकाओं को लेकर उसी तरह का प्राणी तैयार करने में सफलता प्राप्त कर लिया है। वैज्ञानिक इस प्रयास में भी लगे हुए हैं कि ऐसा मानव तैयार कर लिया जो माता–पिता के द्वारा तैयार किए गए मानव से भी सुपर हो। अर्थात् एक ऐसे सुपरमैन तैयार करने की ओर वैज्ञानिक लगे हुए हैं। लेकिन जिस प्रक्रिया से कोशिकीय मानव तैयार किया गया उसमें चेतना या आत्मा का संचार वैज्ञानिक प्रक्रिया का हिस्सा नहीं होता। मृत्यु पर विजय वैज्ञानिकों के लिए इस लिए असंभव लगती है क्योंकि जिस कारण से मृत्यु होती है उस कारण 'आत्मा' के सम्बंध में आधुनिक विज्ञान का कोई विचार नहीं है। आत्मा एक अलग सत्ता है। इस सत्ता के सम्बंध में आधुनिक विज्ञान का न तो कोई अनुसंधान कार्य हुआ है और न तो हो रहा है, बल्कि अभी तक आत्मा की सत्ता को ही वैज्ञानिक नकारते रहे हैं।

एक बड़ा प्रश्न यह भी कि यदि भौतिक शरीर अमर हो जाए तो आत्मा की अमरता जैसी होगी या कुछ शताब्दियों तक? फिर यदि अरबों लोग अमर हो जाएंगे तो धरती पर नए मानव का आगमन होने का कोई

अर्थ नहीं है। अमर मनुष्य जिस रूप में होगा उसी रूप में हजारों वर्ष बना रहेगा। हिंसक, स्वार्थी, भ्रष्टाचारी और व्यभिचारी व्यक्ति भी अमर हो गए तो क्या मानव समाज सभ्य बना रहेगा या राक्षसी बन जाएगा? मेरे विचार से मृत्यु के भय से मुक्त होना ही अमरता का अर्थ है। भय भी एक मृत्यु कहा गया है। भय में जीवन जीने का अर्थ मृत्यु में जीना है।

वेद में भय से मुक्त होने के लिए ईश्वर से प्रार्थना की गई है। अथर्ववेद में प्रार्थना की गई है –

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमें।
अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु।।
–(अथर्व 19.15.5)

अर्थात् हे भगवान्! अंतरिक्षलोक हमें निर्भयता प्रदान करे, द्युलोक व पृथ्वीलोक हमारे लिए भयरहित हों, पश्चिम में व पीछे, पूर्व में व आगे, उत्तर में व दक्षिण में व नीचे से, हमें निर्भयता प्राप्त हो, अर्थात् सब ओर से हमें मित्रता प्राप्त कराओ। इति

उच्च शिक्षा स्वभाषाओं में ?

डॉ. वेदप्रताप वैदिक

शिक्षा मंत्री डॉ. रमेश पोखरियाल निशंक ने आज घोषणा की है कि उनका मंत्रालय उच्च शिक्षा में भारतीय भाषा के माध्यम को लाने की कोशिश करेगा। बच्चों की शिक्षा भारतीय भाषाओं या मातृभाषाओं के माध्यम से हो, यह तो नई शिक्षा-नीति में कहा गया है और कोठारी आयोग की रपट में भी इस नीति पर जोर दिया गया था। १९६७ में इंदिरा सरकार के शिक्षा मंत्रियों डॉ. त्रिगुण सेन, श्री भागवत झा आजाद और प्रो. शेरसिंह तथा बाद में डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने भी शिक्षा में भारतीय भाषाओं को बढ़ाने की भरपूर कोशिश की थी लेकिन हमारी सरकारें, चाहे वे भाजपा या कांग्रेस या जनता दल की हों, शिक्षा का भारतीय भाषाकरण करने में विफल क्यों रही हैं ? इसलिए विफल रही हैं कि उन्हें बाल तो सिर पर उगाने थे लेकिन वे मालिश पांव पर करती रहीं। पांव पर मालिश याने बच्चों को मातृभाषा के माध्यम से पढ़ाना तो अच्छा है लेकिन वे ज्यों-ज्यों आगे बढ़ते हैं, अंग्रेजी की गुलामी करने लगते हैं। उन्हें देखकर समझदार और समर्थ लोग पांव की मालिश भी बंद कर देते हैं। वे अपने बच्चों को भी अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में पढ़ाते हैं। यदि हम देश में शिक्षा और ज्ञान-विज्ञान का माध्यम स्वदेशी भाषाओं को बनाना चाहते हैं तो सबसे पहले उच्च-शिक्षा और पीएच.डी. के शोध-कार्यों को अपनी भाषाओं में करने को प्राथमिकता देनी चाहिए। यदि हमारी सरकारें ऐसी हिम्मत करें तो करोड़ों लोग अपने बच्चों को जानलेवा और जेबकाटू अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों में क्यों पढ़ाएंगे ? तब सरकारी नौकरियों से भी अंग्रेजी की अनिवार्यता हटानी पड़ेगी। यह बात मैं पिछले साठ साल से कहता आ रहा हूं लेकिन निशंक-जैसे शिक्षा मंत्री के मुंह से यह बात पहली बार सुनी है। २०११ में मेरे कहने पर भोपाल में अटलबिहारी वाजपेयी हिंदी वि.वि. इसी उद्देश्य के लिए बनवाया गया था लेकिन अब भी वह घुटनों के बल रेंग रहा है। अब से ५५ साल पहले मैंने इंडियन स्कूल ऑफ इंटरनेशनल स्टडीज में जब अपना अंतरराष्ट्रीय राजनीति का शोधग्रंथ हिंदी में लिखने की मांग की थी तो मुझे 'स्कूल' से निकाल बाहर किया गया था। देश की सभी पार्टियों के नेताओं ने, द्रमुक के अलावा, मेरा समर्थन किया था। संसद का काम-काज कई बार ठप्प हुआ लेकिन अंततोगत्वा मेरी विजय हुई लेकिन असली मुद्दा आज भी जहां का तहां खड़ा है, क्योंकि हमारी सभी सरकारें और शिक्षाशास्त्री अंग्रेजी की गुलामी में जुटे हुए हैं। शायद डॉ. निशंक कुछ कर गुजरें। वे पढ़े-लिखे विद्वान व्यक्ति हैं। यदि वे अंग्रेजी की बपौती को खत्म करके अंग्रेजी समेत ५-७ विदेशी भाषाओं को देश में प्रचलित करें तो हमारा विदेश-व्यापार और राजनय कुलांचे भरने लगेगा और भारत दुनिया की एक सबल और संपन्न महाशक्ति हमारे देखते-देखते बन जाएगा।

वैद्य गुरुदत्त

एक निर्भीक राष्ट्रवादी इतिहासकार एवम् उपन्यासकार...

– ✍ गुंजन अग्रवाल

विज्ञान के विद्यार्थी और पेशे से वैद्य होने के बावजूद गुरुदत्त (8 दिसम्बर 1894 – 8 अप्रैल 1989) बीसवीं शती के एक ऐसे सिद्धहस्त लेखक थे, जिन्होने लगभग दो सौ उपन्यास, संस्मरण, जीवनचरित, आदि का सृजन किया और भारतीय इतिहास, धर्म, दर्शन, संस्कृति, विज्ञानं, राजनीति और समाजशास्त्र के क्षेत्र में भी अनेक उल्लेखनीय शोध–कृतियाँ दीं। इतना विपुल साहित्य रचने के बाद भी वैद्य गुरुदत्त को न तो कोई साहित्यिक व राजनीतिक अलंकरण मिला, न ही उनके साहित्य को विचार–मंथन करने योग्य समझा गया। कॉंग्रेस, नेहरू और महात्मा गाँधी के कटु आलोचक होने के कारण शासन–सत्ता ने वैद्य गुरुदत्त की निरंतर घोर उपेक्षा की। छद्म धर्मनिरपेक्ष इतिहासकारों ने उनको इतिहासकार ही नहीं माना। फलस्वरूप आज की तारीख में वैद्य गुरुदत्त को जानने और पढ़नेवाले नगण्य ही हैं।

वैद्य गुरुदत्त स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनन्य भक्त थे और आर्य समाज के पालने में पले–बढ़े लेखक–साहित्यकार थे। पिछली शताब्दी में आर्य समाज ने भारतवर्ष को एक से बढ़कर एक, निर्भीक राष्ट्रवादी विद्वान् और प्रखर लेखक दिए हैं, जिनमें स्वामी श्रद्धानन्द (1856–1926), पं. लेखराम आर्य (1858–1897), पं. गुरुदत्त विद्यार्थी (1864–1890), आचार्य रामदेव (1881–1939), पं. भगवद्दत्त (1893–1968), वैद्य गुरुदत्त (1894–1989), आचार्य उदयवीर शास्त्री (1894–1991), बुद्धदेव विद्यालंकार (1895–1969), जयचंद्र विद्यालंकार (1898–19..), पं. धर्मदेव विद्यावाचस्पति (1901–1978), डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार (1903–1964), पं. युधिष्ठिर मीमांसक (1909–1994), राजेन्द्र सिंह (1944–2016), आदि प्रमुख हैं। ये वे साहित्यकार–इतिहासकार हैं जिन्होंने अपने लेखन के लिए यूरोपीय ग्रंथों को आधार न बनाकर विशुद्ध भारतीय स्रोतोंकृ वैदिक और लौकिक संस्कृत–साहित्य को उपजीव्य बनाया और भारतीय इतिहासलेखन को एक नयी दिशा दी। ये वे साहित्यकार–इतिहासकार हैं जो भली–भाँति अंग्रेजी जानते थे, किन्तु जिन्होंने अंग्रेजी का प्रयोग न करने का अथवा स्वल्प प्रयोग करने का संकल्प किया था और जिन्होंने हिंदी की अमूल्य सेवा की। कहने की आवश्यकता नहीं कि शासन–पोषित समकालीन ब्रिटिश और मार्क्सवादी विद्वानों के खेमे में इन इतिहासकारों की न केवल घोर उपेक्षा हुई बल्कि इनकी किताबों को भी सरकारी खरीद से दूर रखा गया।

अपने देश में लेखन के क्षेत्र में प्रायः ऐसा देखने में आता है कि ऐतिहासिक उपन्यासकारों और साहित्यकारों को 'इतिहासकार' की कोटि में नहीं रखा जाता। वैद्य गुरुदत्त भी इनमें अपवाद नहीं थे। उन्होंने जिस विपुल परिमाण में उपन्यास लिखे, उससे उनका पेशेवर इतिहासकार वाला व्यक्तित्त्व नहीं उभर सका और वह केवल उपन्यासकार और साहित्यकार होकर रह गए। मेरे सामने एक ताजा उदाहरण बिहार के जाने–माने ऐतिहासिक उपन्यासकार डॉ. शत्रुघ्न प्रसाद का है, जिन्होंने एक दर्जन से अधिक ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, वह स्वयं इतिहास के बहुत अच्छे जानकार और प्रवक्ता हैं, लेकिन वह 'लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार' के रूप में जाने जाते हैं, कोई उनको 'इतिहासकार' मानने को तैयार नहीं। इसके अतिरिक्त हिंदी–साहित्य की अमूल्य सेवा करने के बाद भी, शासन के विमुख जाने के कारण वैद्य गुरुदत्त को 'साहित्यकार' की श्रेणी में भी रखने से परहेज किया गया।

यह भी उल्लेखनीय है कि ब्रिटिश काल में जो लेखक किसी विश्वविद्यालय में सेवारत रहे, और जिन्होंने अंग्रेजी में लेखन–कार्य किया, प्रायः उन्हीं को 'इतिहासकार' की कोटि में रखा गयाय जिन्होंने 'स्वान्तःसुखाय' लेखन किया, उनको सिवाय उपेक्षा के कुछ नहीं मिला। डॉ. राधाकुमुद मुखर्जी, डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल, सर यदुनाथ सरकार, डॉ. पांडुरंग वामन काणे, भगवतशरण उपाध्याय, डॉ. रमेश चन्द्र मजूमदार, राखालदास बनर्जी, ताराचंद, रमेश चन्द्र दत्त, वी.आर. रामचन्द्र दीक्षितार, रामकृष्ण गोपाल भांडारकर, दिनेश चन्द्र सरकार, डॉ. रामशरण शर्मा, इरफान हबीब, रोमिला थापर, हरवंश मुखिया, सुमित

सरकार, नीहाररंजन रायकृ इन सभी ने किसी–न–किसी विश्वविद्यालय में अध्यापन–कार्य किया था और इतिहास पर ही पुस्तकें लिखी थीं। फलस्वरूप ये 'इतिहासकार' माने गए। इसके विपरीत जो किसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नहीं रहे, किन्तु जिन्होंने इतिहास की अमूल्य सेवा की, उनको इतिहासकार ही नहीं माना गया अथवा उनके इतिहासकार होने में संदेह खड़ा किया गया, जैसेकृ पुरुषोत्तम नागेश ओक, आचार्य रघुवीर, राहुल सांकृत्यायन, डॉ. देवसहाय त्रिवेद, धरमपाल, काशीप्रसाद जायसवाल, पं. कोटावेंकटचलम, राजेंद्र सिंह, आदि। मेरे विचार से वैद्य गुरुदत्त की उपेक्षा का यह भी प्रमुख कारण रहा।

वैद्य गुरुदत्त ने इतना अधिक लिखा है जितना लोग एक जीवनकाल में पढ़ भी नहीं पाते। 'स्वाधीनता के पथ पर' से आरम्भ हुआ उनका उपन्यास–जगत् का सफर लगभग दो सौ उपन्यासों के बाद तीन खण्डों में 'अस्ताचल की ओर' पर समाप्त होने से पूर्व सिद्ध कर दिया गया कि वैद्य गुरुदत्त उपन्यास–जगत् के बेताज बादशाह थे।

वैद्य गुरुदत्त ने न केवल उपन्यास लिखा, बल्कि तात्कालिक सभी समस्याओं पर खूब लिखा। इतिहास, विज्ञान, समाजशास्त्र, राजनीति, धर्म, दर्शन, आदि अनेक विषयों पर उन्होंने अनेक मौलिक कृतियाँ देकर हिंदी का ग्रन्थ–भण्डार भरा। 'धर्म, संस्कृति और राज्य' से लेकर 'वेदमंत्रों के देवता' लिखकर उन्होंने भारतीय संस्कृति का सरल एवं बोधगम्य भाषा में विवेचन किया। यहाँ तक कि उन्होंने भगवद्गीता, उपनिषदों और दर्शन–ग्रंथों पर भाष्य भी लिख डाला। 'भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास' और 'इतिहास में भारतीय परम्पराएं' नामक पुस्तकों ने उनको प्रखर इतिहासकार सिद्ध किया। इस पुस्तक में वैद्य गुरुदत्त ने भारत में इतिहासलेखन की विसंगतियों पर जमकर प्रहार किया है। 'विज्ञान और विज्ञान' तथा 'सृष्टि–रचना'–जैसी पुस्तकें लिखकर अपने वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचय दिया। समाजशास्त्र पर उन्होंने 'धर्म तथा समाजवाद', 'स्व अस्तित्व की रक्षा', 'मैं हिंदू हूँ', आदि अनेक पुस्तकें लिखकर समाजवाद की जैसे पोल खोलकर रख दी। 'धर्मवीर हकीकत राय', 'विक्रमादित्य साहसांक', 'लुढ़कते पत्थर', 'पत्रलता', 'पुष्यमित्र', आदि इनके ऐतिहासिक उपन्यास हैं तो 'वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिन्दू राष्ट्र', 'डॉ. श्यामाप्रसाद मुखर्जी की अन्तिम यात्रा', 'हिन्दुत्व की यात्रा', 'भारत में राष्ट्र', 'बुद्धि बनाम बहुमत', इनकी विचार–प्रधान कृतियाँ हैं।

वैद्य गुरुदत्त सन् 1921 के असहयोग आन्दोलन से लेकर सन् 1948 में महात्मा गाँधी की हत्या तक की परिस्थितियों के प्रत्यक्षद्रष्टा रहे। उन्होंने उन घटनाओं का गहन अध्ययन किया। उस काल के सभी प्रकार के संघर्षों को न केवल उन्होंने अपनी आखों से देखा, अपितु अंग्रेजों के दमनचक्र, अत्याचारों और अनीतिपूर्ण आचरण को स्वयं गर्मदल के सदस्य के रूप में अनुभव भी किया। युवावस्था से ही राजनीतिज्ञों से सम्पर्क, क्रान्तिकारियों से समीप का संबंध तथा इतिहास का गहन अध्ययनकृ इन सब की पृष्ठभूमि पर वैद्य गुरुदत्त ने 'सदा वत्सले मातृभूमे' शृंखला में चार राजनीतिक अत्यन्त रोमांचकारी एवं लोमहर्षक उपन्यास हिंदी–जगत् को दिएकृ 1. 'विश्वासघात', 2. 'देश की हत्या', 3. 'दासता के नये रूप' और 4. 'सदा वत्सले मातृभूमे!' समाचार–पत्र, लेख, नेताओं के वक्तव्यों के आधार पर उपन्यासों की रचना की गई है। उपन्यासों के पात्र राजनीतिक नेता तथा घटनाएं वास्तविक हैं। 'पुष्यमित्र' नामक उपन्यास की भूमिका में उन्होंने लिखा है : 'महात्मा गाँधी ने अहिंसात्मक आन्दोलन से एक वर्ष में स्वराज्य ले देने का वचन देकर ऐसी भ्रान्ति उत्पन्न की कि सी.आर. दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू–जैसे बुद्धिमान वकीलों से लेकर गाँव के भंगी, चमार तक महात्मा गाँधी के पीछे लग गये।' इस तरह वैद्य गुरुदत्त के उपन्यासों को पढ़कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि राजनीति के क्षेत्र में वह राष्ट्रीय विचारधारा के लेखक और छद्म धर्मनिरपेक्षतावादियों के शब्दों में 'साम्प्रदायिक' लेखक थे। वैद्य गुरुदत्त ने सच्चे राष्ट्रवादी की भाँति सदैव देश के कल्याण की इच्छा की और इस मार्ग पर चलते हुए कभी भी यश की कामना नहीं की। भारत–विभाजन की सर्वाधिक निर्भीक समीक्षा यदि किसी इतिहासकार ने की तो वह वैद्य गुरुदत्त ने। भारत–विभाजन पर उनकी पुस्तक 'भारत : गाँधी–नेहरू की छाया में' उनके प्रखर चिंतन से निःसृत, राजनीति की कलुष कथा है। लेखक का मत है कि हिंदूविरोधी राजनीति के दुष्परिणाम को मिटाने के लिए घोर प्रयत्न करना पड़ेगा। तभी हम वत्सलमयी मातृभूमि (भारतमाता) के ऋण से उऋण हो सकेंगे।

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी वैद्य गुरुदत्त ने अपना सम्पूर्ण साहित्य हिंदी में लिखकर हिंदी की जो

महती सेवा की है, उसके लिए हिंदी–संसार उनको सदैव स्मरण करेगा।

'भारतीय धरोहर' संस्था ने वैद्य गुरुदत्त की 125वीं जयन्ती (2019–'20) पर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रकाश में लाने और उनको विद्वज्जगत् में स्थापित करने, मान्यता दिलाने का संकल्प लिया है। भारतीय धरोहर के इस कार्य में आर्य समाज, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, आदि संस्थाओं को भी आगे आना चाहिए। यह कार्य किसी एक संस्था और एक–दो व्यक्ति का नहीं है। वैद्य गुरुदत्त जी के साहित्य से राष्ट्रवादी खेमे के सभी विद्वान् प्रेरणा पाते रहे हैं। इन सभी को मिलकर वैद्य गुरुदत्त–साहित्य के प्रचार–प्रसार में संलग्न होना चाहिए।

वैद्य गुरुदत्त के 125वीं जयन्ती–वर्ष में उनके सम्पूर्ण साहित्य की विवेचना होनी चाहिए और उनके सम्पूर्ण साहित्य का 'रचनावली' (सम्पूर्ण वाङ्मय) के रूप में प्रकाशन होना चाहिए। इसके साथ ही वैद्य गुरुदत्त की एक आधिकारिक जीवनी भी आनी चाहिए, जो उनसे जुड़ा विद्वान् ही लिख सकता है। वैद्य गुरुदत्त के 125वीं जयन्ती–वर्ष में उनपर एक डाक–टिकट भी निकलवाने की योजना बनाई जा सकती है, 'वैद्य गुरुदत्त व्याख्यानमाला' का आयोजन किया जा सकता है और उनके नाम से प्रत्येक वर्ष, किसी एक राष्ट्रीय इतिहासकार को 'वैद्य गुरुदत्त राष्ट्रीय सम्मान' भी दिया जा सकता है। आगे के वर्षों में यह भी प्रयास हो कि वैद्य गुरुदत्त–साहित्य पर विश्वविद्यालय–स्तर पर शोध–कार्य हों। एक राष्ट्रवादी सरकार के कार्यकाल में यदि हम यह अपेक्षा करते हैं तो यह अनधिकार चेष्टा नहीं समझी जानी चाहिए। जिस दिन इतना सब हो सका, हम समझेंगे कि वह दिन भारतवर्ष के लिए स्वर्णयुग का प्रभात होगा।

आर्ष क्रान्ति पत्रिका के लिए आर्य लेखक बन्धु अपनी सर्वश्रेष्ठ रचनाएँ भेंजे।

जिजीविषा

१ चलो सहारे के बिना, भले गिरो सौ बार ।
लेकर पांव उधार के, कौन गया उस पार।।

२ लिखी हुई थी माथ पर, लाखों लाखों हार ।
फिर भी देखो हौंसले, लाने चले बहार ।।

३ डरना क्या तूफान से, पृष्ठ मौत का एक।
लिखें मृत्यु की नोक से, जीवन ग्रन्थ अनेक।।

४ हार जीत तो चीज क्या, बेशक जाए जान।
छोड़ वक्त के माथ पर, अपना एक निशान।।

५ बेशक तन घायल हुआ, मन तो भरे उड़ान। जग! जाकर टांको कहीं, अपने तीर-कमान।।

६ लपट आसमां तक उठा, खेल मौत से फाग।
गर्म राख है तो कहीं, भीतर होगी आग।।

७ क्यों जग की सुनता फिरूं, डूबा कूल कगार।
अगर डूबना जिन्दगी, तो डूबू मझधार ।।

८ चलूं गगन के छोर तक, लिए क्षितिज की आस
कटे पांव तो क्या हुआ, अभी कुहनियां पास।।

९ टुकड़ा टुकड़ा क्या जिए, ले ले सांस उधार
आया है तो जी जरा, पाल ख्वाब दो- चार ।।

१० हँस - हँस विपदा झेल तू, सोच न छोर अछोर
घर आएगी चांदनी, स्वयं द्वार पर भोर।।

— ✍ भारत भूषण आर्य
चलभाष – 9871096526

राम प्रसाद बिस्मिल | अशफाक उल्ला खान | रोशन सिंह

आजादी के लिए अपने प्राण न्यौछावर करने वाले महान क्रान्तिवीरों की पुण्यतिथि पर शत शत नमन

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री (8107827572 7665765113
आर्य परिवार संस्था, कोटा